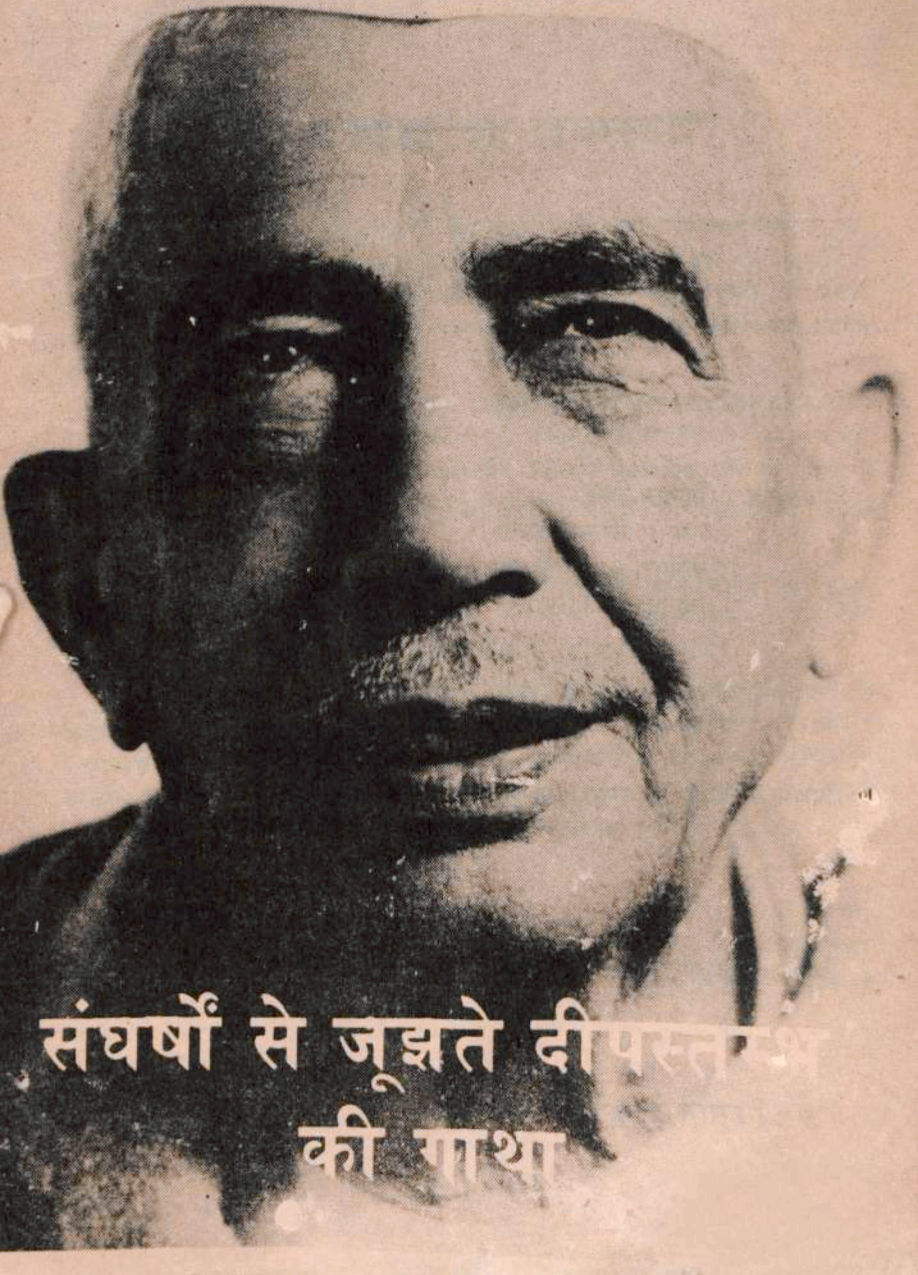
संघर्षों से जूझते दीपस्तम्भ
की गाथा

प्रकाशक : किसान ट्रस्ट
एम-1, मैग्नम हाउस-II,
कर्मपुरा कम्युनिटी सेन्टर,
नई दिल्ली-110015

प्रथम संस्करण : दिसम्बर 1987

मूल्य : एक रुपया

© : किसान ट्रस्ट

प्रकाशक का वक्तव्य

जब कोई देश संकट के दौर से गुजरता है, तब उस देश के महान व्यक्तियों के जीवन वृत्त, उनका दिखाया रास्ता,उस देश के लोगों को संकट से जूझने की प्रेरणा देता है तथा अंधेरे से निकलने का रास्ता सुझाता है। महान व्यक्तियों की महानता इसी में निहित होती है कि उनका दिखाया रास्ता, उनकी नीतियां और सिद्धान्त उनके देश का—समाज का,हर दौर में पथ-प्रदर्शन करते हैं।

आज देश में भ्रष्टाचार की गूंज है, साम्प्रदायिकता का ज़हर आतंकवाद और अलगाववाद से सीमान्त राज्य सुलग रहे हैं, बेरोजगारों की भीड़ है, गरीब के पेट की रोटी और तन का कपड़ा दिन-ब-दिन छोटे होते जा रहे हैं, किसान खेत और बाजार में लुट रहा है;और इन हालात के बावजूद पूंजीपतियों से सांठगांठ, पुलिसतंत्र एवं नौकरशाही के बल पर,सरकार आँखों पर पट्टी बांध कर चल रही है।

ऐसे हालात में इस भटके हुए मुल्क को राह दिखाने हेतु आज जिस दीपस्तम्भ की जरूरत है, उसका नाम है—चौधरी चरण सिंह। हाँ, आज उन्हीं की नीतियों, सिद्धान्तों पर चलकर यह देश अपनी वर्तमान समस्याओं से छुटकारा पा सकता है।

23 दिसम्बर 1987 चौधरी साहब का 86 वाँ जन्मदिवस है। इस महत्वपूर्ण अवसर पर श्रद्धासुमन के रूप में, किसान ट्रस्ट लघु पुस्तिका "संघर्षों से जूझते दीपस्तम्भ की गाथा" प्रकाशित कर रहा है। इस पुस्तिका में सार संक्षेप में दिए चौधरी चरण सिंह के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का अवलोकन कर, आप स्वयं यह निश्चित करेंगे कि एक दीपस्तम्भ है, जो इस राष्ट्र को गति और सही दिशा दे सकता है, उसका नाम है—चौधरी चरण सिंह।

अजय सिंह
मैनेजिंग ट्रस्टी,
किसान ट्रस्ट, दिल्ली

संघर्षों से जूझते दीपस्तम्भ की गाथा

भारतीय राजनीति और आर्थिक विकास के आधार को जिस राजनीतिज्ञ ने पूरी तरह भारतीयता के संदर्भ में लिया और जिया उस व्यक्ति का नाम था–चौधरी चरण सिंह। मेरठ कमिश्नरी की हापुड़ तहसील में बाबूगढ़ छावनी के निकट एक गांव है नूरपुर, इसी गांव के सीमान्त पर कुछ मढ़ैयें (काली मिट्टी के अनगढ़ और फूस के छप्पर छवाये हुए छोटे-छोटे घर) थीं। ऐसी ही एक मढ़ैया में 23 दिसम्बर 1902 ई० को बालक, चरण सिंह, का जन्म हुआ था। तब किसी ने कल्पना भी न की होगी कि आगे चलकर यह बालक भारतीय राजनीति का एक महत्वपूर्ण अध्याय सिद्ध होगा और आजाद भारत में प्रधानमंत्री के शिखर-पद पर पहुंचेगा।

चौधरी चरण सिंह ने राजनीति में जिन नैतिक मूल्यों की स्थापना की, वह मूल्य उन्हें संस्कार के रूप में हासिल हुए थे। वह 6 वर्ष के थे,जबउनके पिता चौधरी मीर सिंह मेरठ के पास जानी खुर्द गांव में आकर बस गये थे। इसी गांव की मिट्टी में पलते-बढ़ते हुए उन्होंने किसान की समस्याओं से साक्षात्कार किया, ग्राम्य जीवन की दुरुहताओं को समझा। वहीं पर उस नन्हें मन में गांव और गरीब के शोषण के खिलाफ संघर्ष का बीज संकल्पित हुआ।

चौधरी चरण सिंह के आचरण में ईमानदारी, साफगोई और कर्तब्यनिष्ठा शुरू से ही रची बसी थी। आगरा विश्वविद्यालय से कानून की डिग्री लेकर 1928 में गाजियाबाद में वकालत शुरू की। कुशाग्र बुद्धि चौधरी चरण सिंह की शीघ्र ही दीवानी के मशहूर वकीलों में गिनती होने लगी। इसके बावजूद वह उन्हीं मुकदमों को स्वीकार करते जिनमें मुवक्किल का पक्ष न्यायपूर्ण होता था। यदि उनका मुवक्किल गरीव होता, तो वह उससे मुकदमे की फीस भी नहीं लेते थे। यहां तक कि कभी-कभी रात होने पर मुवक्किल को अपने घर पर ही ठहरा लिया करते तथा उसके भोजन-पानी की व्यवस्था करते थे।

देखने-सुनने में बात बहुत मामूली सी है किन्तु चौधरी चरण सिंह की उस उदार सोच को स्पष्ट करती है, जिसके चलते वह वकालत जैसे व्यावसायिक पेशे में भी गैर व्यावसायिक बने रह सके।

आजादी के महासमर में

यह वह वक़्त था, जब देश में आजादी की लहर जोरों पर थी, शहर, गांव, कस्बे आजादी के रंग में रंगे हुए थे। 1929 में कांग्रेस के लाहौर अधिवेशन में पूर्ण स्वराज्य का उद्घोष हो चुका था। ऐसे ही माहौल में युवा एडवोकेट चरण सिंह ने गाजियाबाद में कांग्रेस कमेटी का गठन किया।

अंग्रेजों के विरुद्ध आजादी की लड़ाई की ज्वाला को और तेज करने के लिए 1930 में महात्मा गांधी ने सविनय अवज्ञा आन्दोलन शुरू किया। इसी क्रम में गांधी जी ने देश में नमक कानून तोड़ने का आह्वान किया था। इसके लिए उन्होंने प्रसिद्ध 'डांडी मार्च' किया। सारे देश में आजादी के दीवाने नमक बनाकर अंग्रेजों का काला कानून तोड़ रहे थे और जेल जा रहे थे।

गाजियाबाद में यह बीड़ा उठाया नौजवान चरण सिंह ने। गाजियाबाद के सीमांत पर बहने वाली हिंडन नदी के किनारे उन्होंने नमक बनाया। आजादी के यज्ञ में प्रथम आहुति के रूप में यह उनकी पहली जेल यात्रा थी। उन्हें छह महीने की सजा हुई। जेल से जब वह वापिस आये, तो उनके सामने एक ही लक्ष्य था–देश की आजादी। गांधी जी के नेतृत्व में उन्होंने, पूरी तरह स्वतंत्रता संग्राम में, स्वयं को समर्पित कर दिया।

गांधी जी ने अंग्रेजों की नीयत और नीति को देखकर 1940 में व्यक्तिगत तौर पर सत्याग्रह शुरू कर दिया। देश भर में कांग्रेस के नेताओं की धर पकड़ शुरू हो गई। चौधरी चरण सिंह को भी गिरफ्तार कर, मेरठ सेन्ट्रल जेल में डाल दिया गया। किन्तु इस क्षेत्र में उनका इतना प्रभाव था कि अंग्रेजों ने उन्हें मेरठ से बरेली केन्द्रीय कारागार में स्थानान्तरित कर दिया। यहां से उन्हें अक्टूबर 1941 में मुक्त किया गया।

''महात्मा गांधी ने नौ अगस्त 1942 को भारतीयों से 'करो या मरो' का आह्वान किया, साथ ही ब्रिटिश सरकार के खिलाफ आवाज उठाई-'अंग्रेजों भारत छोड़ो'। सारे देश में अंग्रेजी शासन के विरुद्ध बगावत का तूफान उठ खड़ा हुआ। और ऐसे माहौल में युवक चरण सिंह ने पश्चिमी उत्तर प्रदेश के मेरठ संभाग में बगावत की बागडोर सम्हाली। भूमिगत होकर उन्होंने गाजियाबाद, हापुड़, मेरठ, मवाना, सरधना, बुलन्दशहर तथा इनके अन्तर्गत आने वाले गांवों में, क्रान्तिकारियों का गुप्त संगठन खड़ा कर दिया। इन क्षेत्रों में अंग्रेजी प्रशासन को ठप्प करने की मुहिम चालू की। कहते हैं कि उन दिनों मेरठ के जिला प्रशासन ने चौधरी चरण सिंह को देखते ही गोली मरने का आदेश दे दिया था। अंग्रेजों की पुलिस जोर-शोर से उनकी तलाश में थी।

ऐसे ही माहौल में एक दिन चौधरी चरण सिंह दाहा ग्राम में एक जन सभा को सम्बोन्धित कर रहे थे। जोश और उत्साह से जनता उनका भाषण सुन रही थी। सभा स्थल पर पुलिस मौजूद थी किन्तु उसमें इतना साहस नहीं था कि वह जनता के बीच से उन्हें गिरफ्तार कर पाती। इस घटना के कुछ ही दिन बाद उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया। चौधरी चरण सिंह को राजबंदी के रूप में डेढ़ साल की सजा हुई।

जेल में चौधरी साहब का अधिकांश समय गरीबों-किसानों की दुर्दशा के प्रति चिन्तन एवं स्वाध्याय में व्यतीत होता था। बरेली जेल प्रवास में उन्होंने एक पुस्तक लिखी 'शिष्टाचार'। यह पुस्तक भारतीय संस्कृति और समाज में अंगीकृत शिष्टाचार के नियम कायदों का एक बहुमूल्य दस्तावेज है।

आर्य समाज से जुड़ाव

इसी दौरान चौधरी साहब का आर्य समाज से भी जुड़ाव हुआ। 1929 में वह गाजियाबाद आर्य समाज के सभापति चुने गये। कांग्रेस के झंडे के नीचे जहां उन्होंने आजादी की लड़ाई लड़ी, वहीं आर्य समाज के माध्यम से उन्होंने सामाजिक कुरीतियों के खिलाफ जेहाद बोला। गाजियाबाद में आर्य समाज के प्रधान की हैसियत से उन्होंने अनेक जन-हित के काम किये। व्यक्तिगत जीवन में भी वह रूढ़ियों तथा ढोंगवादी प्रवृत्तियों से परहेज रखते थे। यही कारण है कि सच्चाई और सादगी उनके जीवन में दूध-मिश्री की तरह घुली रही।

आर्य समाज से वह जीवन भर जुड़े रहे किन्तु व्यवस्था के तौर पर उन्हें आर्य समाज में जो बात सही नहीं लगी, उसकी उन्होंने आर्य समाज के बीच ही मुखर आलोचना भी की। वह आर्य समाज में चुनाव पद्धति से उपजी कुर्सी दौड़ से बहुत दुखी थे। 26 नवम्बर 1983 को दिल्ली के राम लीला मैदान में 'स्वामी दयानन्द बलिदान शताब्दी समारोह' के अवसर पर आर्य समाजी नेताओं के बीच बोलते हुए चौधरी साहब ने स्पष्ट तौर पर कहा था–

"यदि स्वामी दयानन्द सरस्वती 10 साल और जिन्दा रहते, तो आर्य समाज की चुनावी प्रथा को बदल देते, आर्य समाज से देश को जितनी आशाएं थीं, पूरी नहीं हुई हैं। इस पतन का मूल कारण है इसकी वर्तमान चुनावी पद्धति। यह इसी पद्धति का परिणाम है कि हर व्यक्ति, चाहे वह सुपात्र हो या न हो, प्रधान या मंत्री पद हथियाने के चक्कर में लगा रहता है और सेवा के मूल उद्देश्य से उसका मन भटक जाता है।"

ऐसी खरी बातें कहने का साहस चौधरी चरण सिंह में ही था।

गांव, किसान और दलितों के सिरजनहार

चौधरी चरण सिंह ने गांव के जिस परिवेश में आंख खोली, वहां व्याप्त थी भयानक गरीबी और शोषणवादी व्यवस्था। एक ओर दिन-रात खेत में खटता किसान और मजदूर,फिर भी भूखा और नंगा; दूसरी ओर किसान के खून-पीसने की फसल को कौड़ियों के भाव खरीद कर लगातार समृद्ध होता बिचौलिया वर्ग। उन्होंने गांवों के इस औपनिवेशिक शोषण और किसानों की तकलीफों को बेहद शिद्दत से महसूस किया था। उनके नन्हे मन ने यहीं से असली हिन्दुस्तान के लिए कुछ कर गुजरने का संकल्प लिया।

गांव किसान और दलितों की जो लड़ाई वह जीवन पर्यन्त लड़ते रहे, वह उनकी इसी संकल्प शक्ति की द्योतक थी।

1937 में बागपत-गाजियाबाद क्षेत्र से वह पहली बार प्रांतीय धारा सभा में चुनकर पहुंचे। इन दिनों देश में अनाज के मूल्यों में भारी गिरावट आने के कारण किसान की कमर

टूट रही थी। सरकारी मालखाने में जमा कराने के लिए उनके पास मालगुजारी तक न थी। सरकारी अमले तथा जमींदारों के कारकुन आते और किसान के हल-बैल खोल ले जाते। असहाय किसान को बंदीघर में डाल दिया जाता।

चौधरी चरण सिंह बचपन से ही किसानों के प्रति जमींदारों के अन्याय और सरकार के शोषण से परिचित थे। अतः हालात को देखते हुए धारा सभा में पहुंचते ही उन्होंने "लैण्ड युटिलाइजेशन बिल" शीर्षक से एक मसविदा तैयार किया। इस बिल में यह प्रावधान था कि लगान का दस गुना जमा कर देने पर जमीन का स्वामित्व जोतदार को दे दिया जाये। उन्होंने यह मसविदा सभी विधायकों को भेजा तथा इस बिल को धारा सभा में रखने का प्रयास किया, किन्तु अंग्रेज शासक तो जमींदारों-भूस्वामियों के हित रक्षक और गरीब किसानों के शोषक थे। अतः वे इस किसान हितकारी बिल को लाने की अनुमति कैसे देते। परिणाम वही हुआ, अंग्रेज शासकों ने धारा सभा में बिल रखने की अनुमति नहीं दी। विदेशी शासकों की शोषक नीतियों के कारण उस समय यद्यपि चौधरी चरण सिंह को अपने उद्देश्य में सफलता नहीं मिली किन्तु गरीब किसानों ने यह एहसास किया कि उनकी आवाज उठाने वाला और उनकी समस्याओं के बारे में शिद्दत से सोचने वाला एक व्यक्ति धारा सभा में मौजूद है।

चौधरी चरण सिंह उन लोगों में से थे, जो असफलताओं से हार नहीं मानते। उनके द्वारा रखा गया 'भूमि उपयोग बिल' भले ही पारित न हो सका किन्तु उन्होंने उन्हीं दिनों धारा सभा में एक ऋण निर्मोचन विधेयक रखा। इस विधेयक का विरोध तो कांग्रेस के ही कई विधायकों ने किया, क्योंकि इनमें से कई ऐसे विधायक थे, लाखों गरीब खेतिहर मजदूर और किसान जिनके ऋण-पाश में जकड़े हुए थे किन्तु चौधरी साहब ने विधेयक के पक्ष में अकाट्य तर्क प्रस्तुत किये; दूसरे विरोधी विधायकों की संख्या कम थी, अतः ऋण निर्मोचन विधेयक पारित हो गया। इस विधेयक के पारित होने से किसान ऋण मुक्त हो गये तथा उनके खेत-घर नीलाम होने से बच गये।

मंडी समिति बिल

चौधरी चरण सिंह में जनहितकारी सोच, कुशाग्र बुद्धि और विलक्षण प्रतिभा का समन्वय शुरू से ही देखने को मिला। जब वह उत्तर प्रदेश धारा सभा में विधायक थे, तब उन्होंने 31 मार्च और 1 अप्रैल 1938 के "हिन्दुस्तान टाइम्स" में कृषि विपणन (एग्रीकल्चरल मार्केटिंग) पर दो लेख लिखे। इन लेखों में चौधरी साहब ने बाजार में किसान को होने वाली परेशानियों तथा उसके शोषण की स्थितियों को उजागर किया था। उन्होंने यह भी बताया था कि म्युनिसिपल टैक्स, मार्केट चार्जेज आदि भिन्न-भिन्न टैक्स लगाकर किसान की बाजार में कैसे लुटाई की जाती है। साथ ही कम तुलाई तथा भण्डारण की व्यवस्था न होने से उसे कितनी असुविधा का सामना करना पड़ता है, यह इन लेखों में बताया गया था।

चौधरी साहब जानते थे कि छोटी-छोटी और बिखरी हुई जोतें, जहां किसान के लिए तमाम कठिनाईयां पैदा करती थीं, वहीं उनसे अन्न का उत्पादन भी कम होता है। अतः उन्होंने 1953 में चकबंदी कानून पारित कराया। जब 1954 में यह कानून लागू हुआ, तो शुरू में इससे होने वाले लाभ को किसान समझ नहीं पाये किन्तु बाद में जब उन्होंने देखा कि उनके दसियों जगह फैले खेत एक या दो चक में संगठित हो गये हैं, निरर्थक मेढ़ें मिट गई हैं, तो उन्होंने इस कानून का खुले मन से स्वागत किया।

चकबंदी के परिणाम स्वरूप उत्तर प्रदेश में, आठ वर्ष में 1, 62, 63, 809 खेतों के 28, 27, 940 चक बना दिये गये। एक चक में औसतन 5.75 खेत शामिल थे। नतीजा यह निकला कि इन खेतों के मालिकों को फसल की रखवाली, सिंचाई के लिए पानी के मुस्तकिल इन्तजाम तथा फसल को खेत से खलिहान तक ले जाने की व्यवस्था करने में सुविधा हो गई, साथ ही मानव श्रम में भी बचत हो गई। कृषि उपजों में भी खासी वृद्धि देखने में आई।

उस समय उत्तर प्रदेश कृषि विकास के सलाहकार थे अमेरिकी कृषि विशेषज्ञ अलवर्ट मायर। चकबंदी के सन्दर्भ में श्री मायर की टिप्पणी इस प्रकार थी : "चकबंदी के काम को देखकर मुझे ऐसा लगा है कि यह अत्यंत महत्व का काम गांवों के कृषि उत्पादन में क्रांति लाने वाला सिद्ध होगा।"

अमेरिकी कृषि विशेषज्ञ श्री लैडजिन्स्की ने भी फोर्ड फाउंडेशन को प्रेषित अपनी रिपोर्ट में चकबंदी योजना की प्रशंसा की थी। किन्तु जमींदारी उन्मूलन कानून की तरह कांग्रेस शासित सभी राज्यों ने चकबंदी कानून का भी लाभ किसान तक पहुंचाने में कोई विशेष दिलचस्पी नहीं दिखाई, केवल कुछ राज्य ही इस दिशा में सक्रिय हो सके। यदि उनमें भी चौधरी चरण सिंह की सी इच्छा शक्ति-संकल्प शक्ति रही होती, तो पिछड़े और शोषित तबकों के कल्याण की इन योजनाओं का क्रियान्वयन वंहां भी सम्भव हो सका होता।

1954 में ही चौधरी चरण सिंह ने उत्तर प्रदेश में भूमि संरक्षण कानून बना कर पारित कराया। यह देश भर में अपनी तरह का पहला कानून था। जिले में तथा विकास खण्ड स्तर पर मिट्टी के वैज्ञानिक परीक्षण की योजना चौधरी साहब ने ही क्रियान्वित की थी। इस योजना का लक्ष्य था मिट्टी की प्रकृति के अनुरूप खादों का प्रयोग कर, कृषि उपजों में वृद्धि करना। इसका लाभ भी प्रदेश के किसानों को मिला।

चौधरी साहब ने गरीब किसानों के हक में एक विशेष काम यह किया कि सस्ती खाद-बीज आदि के लिए कृषि आपूर्ति संस्थानों की योजना चलाई। 1963 से पूर्व सस्ते बीज, उर्वरक तथा कृषि यंत्रों आदि की सुविधाएं उन्हीं किसानों को मिल पाती थीं, जो सहकारी समितियों के सदस्य होते थे। लगभग 40 प्रतिशत किसान ही इन समितियों के सदस्य थे। बाकी 60 प्रतिशत किसानों को ये सुविधाएं उपलब्ध कराने के लिए चौधरी साहब ने कृषि आपूर्ति संस्थानों की स्थापना की।

उत्तर प्रदेश में मुख्यमंत्री

मार्च 1967 में जब श्री चन्द्रभानु गुप्त ने उत्तर प्रदेश में कांग्रेस मंत्रिमंडल का गठन किया, तो ऐसे दो विधायकों को भी मंत्रिमंडल में शामिल किया, जिनके बारे में चौधरी चरण सिंह की राय अच्छी नहीं थी। प्रदेश मंत्रिमंडल के गठन से पूर्व ही केन्द्रीय मंत्री राजा दिनेश सिंह और श्री उमाशंकर दीक्षित ने उन्हें वचन दिया था कि उक्त दोनों विधायकों को मंत्रिमंडल में शामिल नहीं किया जायेगा। इसके बावजूद ऐसा हुआ। चौधरी साहब भ्रष्टाचार के विरूद्ध शुरू से ही थे और सिद्धांतों से समझौता करना उनकी आदत में शामिल न था। इस सन्दर्भ में जब उन्होंने पार्टी के केन्द्रीय नेतृत्व से अपना विरोध पुनः प्रकट किया, तो चन्द्रभानु गुप्त ने एक बयान में यह कहा कि "मैं जब तक कांग्रेस दल का नेता हूँ, कोई भी दल से अलग होने का साहस नहीं कर सकता। जो ऐसा करेगा, मैं उसे भंगी बना दूंगा।"

चौधरी साहब के आत्म सम्मान पर चोट करने के लिए यह काफी था। एक अप्रैल 1967 को वह अपने साथियों के संग, विरोधी बैंचों पर जा बैठे। उसी दिन बजट का एक प्रस्ताव पारित होना था किन्तु सदन में वह प्रस्ताव बहुमत से गिर गया। जाहिर था गुप्त जी की सरकार दम तोड़ चुकी थी। चौधरी साहब को भंगी बनाने की धमकी देने वाला अब खुद सड़क पर आ चुका था। इस घटना के बाद गुप्ता जी की सत्ता की राजनीति कभी परवान नहीं चढ़ी।

तीन अप्रैल 1967 को उत्तर प्रदेश में संविद सरकार का गठन हुआ और चौधरी चरण सिंह मुख्यमंत्री बने। उनके मुख्यमंत्री बनते ही प्रदेश के दबे पिछड़े तबकों में हर्ष की लहर दौड़ गई। उन्हें लगा कि उन्हीं के बीच का कोई व्यक्ति आज प्रदेश का मुख्यमंत्री बना है।

चौधरी साहब ने मुख्यमंत्री बनते ही निचले तबकों और किसानों की हालत में सुधार लाने के अनेक काम किये। कुटीर उद्योग तथा कृषि उत्पादन में वृद्धि की योजनाओं को क्रियान्वित करने की दृष्टि से सरकारी एजेंसियों द्वारा ऋण देने के तौर-तरीकों को सुगम बनाया, साढ़े छह एकड़ तक की जोत पर आधा लगान माफ कर दिया तथा दो रुपये तक का लगान बिल्कुल समाप्त कर दिया गया, किसानों की उपज, विशेषकर नकदी फसलों, के लाभकारी मूल्य दिलाने की दिशा में महत्वपूर्ण निर्णय लिये; भूमि भवन कर समाप्त कर दिया। सरकारी काम काज में हिन्दी का शत प्रतिशत प्रयोग तथा 23 तहसीलों में, जो उर्दू बहुल थीं, सरकारी गजट उर्दू में उपलब्ध कराने की व्यवस्था की गई।

मुख्यमंत्रित्व काल में ही चौधरी साहब ने किसानों को जोत वही दिलवाई, जिससे उनके भूमि सम्बंधी रिकार्ड में गड़बड़ न की जा सके।

नहर की पटरियों पर चलना ब्रिटिश दौर से ही प्रतिबंधित था। ऐसा करने पर फाइन देना पड़ता था। चौधरी साहब ने इस प्रतिबंध को कानूनन खत्म करवा दिया।

उन्हीं दिनों मध्य प्रदेश, गुजरात, बिहार और महाराष्ट्र में भीषण साम्प्रदायिक दंगे हुए थे किन्तु उत्तर प्रदेश में कहीं पत्ता नहीं खड़का। यह चौधरी चरण सिंह सरकार की एक विशेष उपलब्धि थी। इसका कारण था अल्पसंख्यकों की चौधरी साहब में पूर्ण विश्वास और निष्ठा। यह चौधरी चरण सिंह ही थे, जिन्होंने अनुसूचित जाति के एक सदस्य को पहली बार राज्य लोक सेवा आयोग का सदस्य नियुक्त किया। मंत्रिमंडल में हरिजनों के अतिरिक्त पिछड़े वर्गों से चार मंत्री लिए। उन्होंने यह व्यवस्था भी की कि शिक्षण संस्थाओं में छात्र संघों का होना अनिवार्य नहीं होगा। उस वर्ष कालेजों में अन्य वर्षों की अपेक्षा अध्ययन-अध्यापन अधिक हुआ तथा माहौल शांति पूर्ण रहा।

स्व० श्रीमती इंदिरा गांधी ने आपातकाल में जो तथाकथित अनुशासन का दौर चलाया था, चौधरी चरण सिंह के मुख्यमंत्रित्व काल में वही अनुशासन अपने स्वाभाविक और सच्चे अर्थों में सरकारी विभागों में देखने को मिला। कर्मचारी समय पर कार्यालयों में आने लगे तथा अपनी सीट पर मौजूद रह कर काम करते थे।

जहां तक भ्रष्टाचार का सवाल है तो सरकारी कार्यालयों में रिश्वत का बाजार एकदम ठप्प पड़ गया था। चौधरी चरण सिंह के बारे में तरह-तरह की किंवदंतियां प्रचलित हो गई थीं। एक बार आम जनता में यह खबर सुनने में आई कि अमुक जगह पर चौधरी चरण सिंह ने भेष बदल कर रिश्वत लेते अधिकारी को पकड़ लिया।

दरअसल कोई भी सरकार अपने इकबाल से चलती है। जिस सरकार का इकबाल कायम नहीं होता, वह अपनी जनता को स्वच्छ और व्यवस्थित प्रशासन नहीं दे पाती। चौधरी चरण सिंह की सरकार का इकबाल कायम था, जो सरकारी विभागों में ईमानदारी और अनुशासन कायम करने में सहायक हुआ। आज राजीव सरकार का या इससे पूर्व उनकी मां श्रीमती इंदिरा गांधी की सरकार का कोई इकबाल कायम नहीं हो सका, जिसके चलते भ्रष्टाचार दिन दूना-रात चौगुना बढ़ा है। सरकार के इकबाल का दारोमदार होता है नेता पर। चौधरी चरण सिंह एक ऐसे नेता थे, जिनकी ईमानदारी, नैतिकता और प्रशासनिक दृढ़ता की धाक पहले से ही थी; दूसरी ओर श्रीमती इंदिरा गांधी ''भ्रष्टाचार तो विश्वव्यापी है'' कह कर स्वयं भ्रष्टाचार की वकालत करती थीं और श्री राजीव गांधी को तो अपनी ईमानदारी की सफाई संसद में तथा देश भर में देनी पड़ी है।

फेर-बदल

अलबत्ता तमाम जनहित के कार्यों और सफल प्रशासनिक क्षमता के बावजूद, संविद के संसोपा और जनसंघ घटकों के मनमाने तौर-तरीकों के कारण, 10 माह बाद ही चौधरी चरण सिंह ने खिन्न होकर मुख्यमंत्री पद से 17 अप्रैल 1968 को इस्तीफा दे दिया। चौधरी साहब ने इस्तीफे में स्पष्ट लिखा था कि संविद के नये नेता को वह अपना समर्थन देंगे। इसके बावजूद राज्यपाल ने राज्य में राष्ट्रपति शासन की घोषणा कर दी।

1969 में उत्तर प्रदेश में मध्यावधि चुनाव हुए। चौधरी चरण सिंह के दल भारतीय क्रांति दल ने चुनावों में भारी सफलता हासिल की। बी.के.डी. के 98 विधायक चुन कर आये।

10 फरवरी 1970 को चन्द्रभानु गुप्त की कांग्रेस सरकार को इस्तीफा देना पड़ा। हालात कुछ ऐसे बने कि 17 फरवरी को चौधरी साहब भारतीय क्रांति दल के नेता के रूप में पुनः मुख्यमंत्री बने।

1969 में कानपुर में जब भारतीय क्रांति दल का अधिवेशन हुआ था, तो चौधरी साहब ने स्पष्ट घोषणा की थी कि उनका दल ग्रामोन्मुख आर्थिक नीति पर चलेगा। उनका मानना था कि कृषि उपज बढ़ा कर तथा गांवों में कुटीर उद्योग धंधे लगा कर, बेरोजगारी से निपटने की नीति पर अमल करने से गांवों के लोगों का शहर की ओर पलायन रुकेगा, साथ ही कृषि भूमि पर बोझ भी कम होगा।

चौधरी साहब ने सत्ता में आते ही कृषि उत्पादन बढ़ाने की नीति को प्रोत्साहन देते हुए उर्वरकों से बिक्री कर उठा लिया, साढ़े तीन एकड़ वाली जोतों का लगान माफ कर दिया, भूमिहीन खेतिहर मजदूरों को कृषि भूमि दिलाने के कार्य पर और जोर दिया। छह महीने की अवधि में ही 626,338 एकड़ भूमि की सीरदारी के पट्टे और 31,188 एकड़ के आसामी पट्टे वितरित किये गये। सीलिंग से प्राप्त सारी जमीन भूमिहीन हरिजनों तथा पिछड़े लोगों को ही दी गई। भूमि विकास बैंकों की कार्य-प्रणाली को और उपयोगी बनाया।

चौधरी साहब ने प्रशासनिक कुशलता की दृष्टि से जहां पुलिस को चुस्त-दुरुस्त किया, वहीं इसी दौरान गुण्डा विरोधी अभियान भी चलाया। इन कार्यों का परिणाम यह हुआ कि जहां गरीब, पिछड़े और किसान-मजदूर तबकों को राहत मिली, वहीं राज्य में कानून व्यवस्था में भी सुधार आया। अपने जनहितकारी कार्यों तथा प्रशासनिक कार्यों के लिए चौधरी साहब को उत्तर प्रदेश के लोग आज भी याद करते हैं।

केन्द्र में गृहमंत्री

गृहमंत्री के रूप में चौधरी साहब ने पिछड़ों और परिगणित जाति के लोगों के लिए सरकारी नौकरियों में समुचित आरक्षण की दृष्टि से मंडल आयोग की स्थापना का ऐतिहासिक काम किया। दुर्भाग्य की बात यह रही कि जनता सरकार का अल्पकाल में ही पतन हो गया, अन्यथा मंडल आयोग की सिफारिशें लागू होने पर पिछड़ों के साथ सामाजिक न्याय की बेहतर स्थिति होती। कांग्रेस सरकार ने आज भी मंडल आयोग की रिपोर्ट को रद्दी की टोकरी में डाल रखा है। चौधरी साहब ने जीवन के अंतिम दिनों तक मंडल आयोग की सिफारिशों को लागू कराने के लिए संघर्ष किया और आज भी लोक दल इस मामले में संघर्ष की नीति अपनाये हुए है।

अल्पसंख्यकों के प्रति चौधरी साहब बेहद संवेदनशील रहते थे। यही वजह थी कि अल्पसंख्यक भी उनमें अपने हमदर्द की छवि देखते थे। चौधरी साहब ने अल्पसंख्यकों के हित सम्बर्द्धन की दृष्टि से अल्पसंख्यक आयोग की स्थापना की थी।

एक अप्रैल 1938 के लेख में चौधरी साहब ने किसान को बाजार में होने वाली असुविधाओं को दूर करने के सन्दर्भ में अपने विचार रखे थे, साथ ही मंडी समिति की रूप रेखा भी उन्होंने इस लेख में प्रस्तुत की थी।

चौधरी चरण सिंह के इन लेखों को हरियाणा के तत्कालीन कृषि मंत्री सर छोटूराम ने भी पढ़ा। वह इस नौजवान चिन्तक के लेखों से बहुत प्रभावित हुए तथा उन्हें लगा कि किसान के उत्पादन की बाजार-व्यवस्था के लिए यह सुझाव बेहद उपयोगी सिद्ध होंगे। उन्होंने अपने संसदीय सचिव श्री टीकाराम जी को चौधरी साहब के पास भेजा तथा उनकी सहमति से उनके कृषि विपणन सम्बंधी विचारों को "मंडी समिति एक्ट" के नाम से पंजाब में पारित किया।

दरअसल चौधरी साहब इस बिल को उत्तर प्रदेश धारा सभा में पारित करना चाहते थे किन्तु 1938 में धारा सभा भंग कर दी गई थी। अतः तब यह सम्भव न हो सका। किन्तु आजाद भारत में स्वदेशी शासन की स्थापना के बाद 1949 में इन्हीं प्रस्तावों को चौधरी साहब ने उत्तर प्रदेश विधान सभा में पारित कराया।

चौधरी चरण सिंह का चिन्तन व्यवहारिकता के धरातल पर निर्भर होता था। उनमें किसी किस्म की हवाबाजी या खोखलापन नहीं होता था। उन्होंने गांव में रहकर उन विसंगतियों को बहुत करीब से देखा था, जो विकास के नाम पर गांवों को औपनिवेशिक शोषण के शिकंजे में कसती थीं। उन्होंने देखा था कि जो हाकिम-अफसरान गांवों की समस्याओं से निपटने की योजनाएं बनाते थे, उन्हें न तो समस्याओं का पूरा ज्ञान होता था, न ही उन्हें दूर करने की संकल्प शक्ति होती थी। उनके लिए गांव और किसान उतने ही हीन थे, जितने अंग्रेजों के लिए भारतीय। इस स्थिति को मद्दे नजर रखते हुए चौधरी साहब ने 1939 में नव निर्वाचित धारा सभा में प्रस्ताव रखा,जिसमें 50% उच्च प्रशासनिक पद, खेतिहर अथवा गांवों के निवासियों के लिए आरक्षित रखने की बात की गई थी किन्तु उस प्रस्ताव को शोषणवादी नीति के आश्रयदाताओं ने विचार के योग्य भी न समझा।

आजादी के तुरन्त बाद चौधरी चरण सिंह ने 1947 में कांग्रेस विधान मंडल के समक्ष इसी आशय का प्रस्ताव पुनः रखा। इस बार चौधरी साहब ने इस विषय की महत्ता को सिद्ध करते हुए एक लम्बा लेख भी लिखा था, "सरकारी सेवाओं में किसान संतान के लिए 50 प्रतिशत आरक्षण क्यों?"

इस लेख में चौधरी साहब ने विभिन्न राष्ट्रीय-अन्तर्राष्ट्रीय विद्वानों और संस्थाओं को उद्धृत करते हुए सिद्ध किया था कि किसानों की समस्याओं को वही समझ और सुलझा सकता है, जिसकी प्रतिक्रिया हालात तथा वस्तुओं के प्रति, किसान के समान होती है, कोई दूसरा नहीं। इस सबके बावजूद इस प्रस्ताव को पारित नहीं कराया जा सका, क्योंकि कांग्रेस और पं० नेहरू का मोह कृषि के प्रति नहीं बल्कि उद्योगों और केवल बड़े उद्योगों के प्रति था।

किसानों के पक्ष में क्रांतिकारी कदम

15 अगस्त 1947 को देश आजाद हुआ। इसके साथ ही उत्तर प्रदेश में पूर्ण सक्षम मंत्रिमंडल का गठन हुआ। उस समय चौधरी चरण सिंह को स्वायत्त शासन और स्वास्थ्य विभाग में सभा सचिव नियुक्त किया गया। 1948 में उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री पंडित गोविन्द बल्लभ पंत ने उन्हें अपना सभा सचिव नियुक्त किया तथा सूचना एवं न्याय विभाग सौंपा। चौधरी चरण सिंह अपनी सीमाओं और क्षमता के अनुरूप जिस प्रकार प्रशासनिक काम-काज चला रहे थे, उससे उनकी छवि एक कर्मठ, कुशल और ईमानदार प्रशासक के रूप में बन रही थी। इसी कर्मठता और कुशलता को दृष्टिगत रखते हुए पंतजी ने 1950-51 में उन्हें जमींदारी उन्मूलन विधेयक तैयार करने का काम सौंपा।

दर असल अंग्रेजों के जमाने में जमींदार जिस तरह उनकी मुसाहिबी करके, गरीब और मेहनतकश किसानों का शोषण करते थे, उसका चौधरी साहब को पूरा अनुभव था। जमींदारों की वही नियत और नीति अभी भी जारी थी। अब वह कांग्रेस में घुसपैठ कर, अन्याय का अध्याय जारी रखना चाहते थे। चौधरी चरण सिंह ने उत्तर प्रदेश के किसानों को जमींदारों के शिकंजे से मुक्ति दिलाने के लिए दिन-रात अथक परिश्रम किया। उन्होंने पूरे प्रदेश का दौरा किया। गांव-गांव जाकर किसानों से मिले। चौधरी साहब के संकल्पित श्रम का जो परिणाम सामने आया, वह प्रदेश के किसानों के लिए एक क्रांतिकारी कदम था। उन्होंने जो जमींदारी उन्मूलन विधेयक तैयार किया, उसकी जहां मुख्यमंत्री पं० गोविन्द बल्लभ पंत तथा गरीबों का हित चाहने वाले लोगों ने प्रशंसा की, वहीं कांग्रेस में शामिल सामंती तत्वों ने भरपूर विरोध किया।

दरअसल चौधरी चरण सिंह द्वारा तैयार किया गया जमींदारी उन्मूलन विधेयक "राज्य के कल्याणकारी निदेशक सिद्धांत" की परिकल्पना पर आधारित था। राज्य के किसान यदि आजादी के बाद भी शोषण के उसी शिकंजे में जकड़े रहते, तो उनके लिए 15 अगस्त 1947 का कोई महत्व न रहता, न ही आजादी उनके लिए अर्थवान होती। गांधी और गांधीवाद के सच्चे अनुयायी चौधरी चरण सिंह के लिए यह सम्भव न था कि अवसर मिलने के बावजूद वह शोषण की ऐसी स्थिति को बरकरार रहने देते।

चौधरी साहब द्वारा तैयार 'जमींदारी उन्मूलन विधेयक' जब विधान सभा में रखा गया, तो सामंतों के मुट्ठी भर हितचिंतक बहुत कसमसाये किन्तु विधान सभा ने विधेयक को मूल रूप में पारित कर दिया। विधेयक पारित होने के बाद काश्तकारों, खेतिहरों को सीरदारी का हक हासिल हो गया, साथ ही जो भूमिहीन शिकमी बंटाई पर खेती करते थे, उन्हें अधिवासी बना दिया गया। सदियों से खेत में खून पसीना बहाने वाले को अपनी मेहनत का रंग देखने का भी मौका मिला।

खेत जोतने वाले को ऐसा हक हासिल हुआ, जिससे बेदखल करना सम्भव नहीं था। इस विधेयक की धारा नौ में प्रावधान था कि जमींदारों के जुए में खटने वाले इन पिछड़ों

और शोषितों को उस जमीन, जिस पर उनका आवास बना है तथा उसकी परिसीमा में आने वाले कुएं तथा पेड़ों पर भी हक हासिल होगा। इस अधिकार के बाद उन्हें जमींदारों के इस आतंक से मुक्ति मिली कि कहीं आवासीय भूमि से उनकी झोंपड़ी न उजाड़ दी जाये। इस विधेयक का सर्वाधिक लाभ हरिजनों और पिछड़े वर्गों को हुआ।

विधेयक को न्यायालय में भी चुनौती दी गयी किन्तु विद्वान न्यायाधीशों को इसमें कहीं भी कोई झोल या पेंच नजर नहीं आया। अतः विधेयक की कोई भी धारा न्यायालय ने रद्द नहीं की।

एक जुलाई 1952 का दिन वह दिन था, जब उत्तर प्रदेश के पिछड़ों और भूमिहीनों ने चौधरी चरण सिंह में अपने पेशवा के दर्शन किये। इसी दिन से प्रदेश में जमींदारी उन्मूलन विधेयक लागू हुआ।

1954 में योजना आयोग ने राज्य सरकारों को यह कानून बनाने का अधिकार दे दिया कि जिन जमींदारों के पास खुद काश्त की जमीनें नहीं हैं, वे 30 से 60 एकड़ तक जमीन अपनी जोत के भीतर ले सकते हैं। केन्द्र सरकार के इस ढीलेपन का लाभ उठाकर अनेक राज्य सरकारों ने जमींदारों को, उनकी जमीनें गरीब किसानों से छीन कर, पुनः वापिस दिला दीं। महाराष्ट्र में ही भूस्वामियों ने 17 लाख एकड़ जमीन, जो भूमिहीनों के कब्जे में चली गई थी, पुनः छीन ली। उत्तर प्रदेश में जमींदारों ने केन्द्र सरकार के इस आदेश के अन्तर्गत लाभ उठाना चाहा और किसानों को मिली जमीन से बेदखल करना चाहा किन्तु जमींदारों के मंसूबे पूरे न हो सके—और इसके एक मात्र कारण थे चौधरी चरण सिंह। उन्होंने गांव-गांव में सभाएं कीं और भूमिहीनों को उनके अधिकारों के बारे में बताया।

दरअसल योजना आयोग के माध्यम से केन्द्र सरकार ने भूतपूर्व जमींदारों और भूस्वामियों को खुश करने की, पिछले दरवाजे से साजिश रची थी, जिसे उत्तर प्रदेश में चौधरी साहब ने नाकाम कर दिया। इतना ही नहीं, 1954 में एक संशोधन के जरिये पूर्ण सीरदारी के हक भी दे दिये गये।

चौधरी चरण सिंह के जमींदारी उन्मूलन विधेयक की विदेशी विद्वानों ने भी प्रशंसा की। अमेरिकी कृषि विशेषज्ञ डब्लू.ए.लैडजिंस्की ने भारत के योजना आयोग को एक रिपोर्ट पेश की थी—"टेन्यूरियल कंडीशन्स इन दि पैकेज डिस्ट्रिक्ट्स 1963"। इस रिपोर्ट में श्री लैडजिंस्की ने कहा था—

"वास्तव में केवल उत्तर प्रदेश ही एक ऐसा राज्य है, जहां बहुत सोचा-समझा व व्यापक कानून पास किया गया है और उसे असरदार ढंग से लागू किया गया है। वहां लाखों कास्तकारों को, जो जमीन से बेदखल कर दिये गये थे, उनके अधिकार वापिस दिये गये हैं।"

जमींदारी उन्मूलन के सन्दर्भ में विशेष बात यह रही कि अन्य राज्यों ने भी उत्तर प्रदेश की तर्ज पर जमींदारी उन्मूलन विधेयक पारित तो किये किन्तु उनका स्वरूप वैसा कल्याणकारी न था, जैसा चौधरी चरण सिंह द्वारा तैयार विधेयक का था। बिहार में तो भूस्वामियों-सामंतों ने माल खातों में अपने पशु-पक्षियों के नाम भूमि चढ़ा कर सीमा से अधिक जमीन अपने अधिकार में रखी। दर असल हर राज्य के पास कोई चौधरी चरण सिंह न था, जो पिछड़े, गरीब तबकों और किसानों के दुख दर्द को इतनी शिद्दत से समझ पाता और उसे दूर करने में दिन-रात जुटा रहता।

कुचक्र का जवाब

योजना आयोग के माध्यम से केन्द्र सरकार की शह पाकर जमींदारों ने एक और चाल चली। उन्होंने पटवारियों को आन्दोलन करने के लिए भड़का दिया। दरअसल पटवारी जमींदारों के इशारेपर किसानों का भयानक शोषण करते थे। जमींदारी उन्मूलन विधेयक लागू होने के बाद, पटवारी भी अन्दर ही अन्दर खार खाये बैठे थे, क्योंकि किसानों पर जुल्म करने के अवसर अब उन्हें नहीं मिलते थे। अतः उन्होंने अपनी कुछ मांगें प्रदेश सरकार के सामने पेश कर, आन्दोलन शुरू कर दिया। राज्य के 27000 पटवारियों को पूरी उम्मीद थी कि सरकार उनके आन्दोलन के आगे झुक जायेगी। इसकी वजह यह थी कि माल विभाग का काफी दारोमदार पटवारियों पर था।

सरकार उनकी मांगों पर कोई निर्णय ले पाती, इससे पहले ही राज्य भर के पटवारियों ने, सरकार पर और अधिक दबाव बनाने के लिए, अपने त्यागपत्र सरकार को ेन दिये। चौधरी चरण सिंह ने पटवारियों के इस्तीफे तुरन्त स्वीकार कर लिये। दर सल चौधरी साहब पटवारियों के हाथों किसानों के होने वाले शोषण से पूरी तरह ाकिफ थे।

चौधरी साहब के इस कदम से जहां पटवारी हतप्रभ रह गये, वहां प्रशासनिक क्षेत्र में उनकी दृढ़ता की धाक जम गई। उन्होंने पटवारियों का काम काज सम्हालने के लिए "लेखपाल" का पद बना दिया। लेखपालों की भरती में चौधरी साहब ने 18 प्रतिशत स्थान हरिजनों के लिए आरक्षित रखे थे।

चकबंदी कानून

कृषि एवं राजस्व मंत्री के रूप में चौधरी चरण सिंह ने एक और क्रांतिकारी काम किया—यह था चकबंदी कानून। दरअसल चौधरी साहब एक ऐसे राजनीतिज्ञ थे, जो किसान की समस्याओं को किसान की ही नजर से देखते थे। दरिद्र नारायण के कल्याण की भावना उनके अन्तर्मन में थी, अतः उनका हर आचरण उसी कल्याणकारी विचार के तहत होता था।

केन्द्र में वित्त मंत्री

1979 में जब चौधरी चरण सिंह उप-प्रधानमंत्री तथा वित्तमंत्री बने, तब भी उन्होंने कृषि तथा कुटीर उद्योगों को प्रोत्साहन देने के लिए अनेक निर्णय लिए।

औद्योगिक विकास बैंकों की तरह उन्होंने राष्ट्रीय कृषि एवं ग्रामीण विकास बैंक की स्थापना की। दरअसल राष्ट्रीय बैंकों से कृषि विकास के लिए निर्धारित राशि का कृषक समुदाय पूरा लाभ नहीं उठा पाता था या उन्हें ईमानदारी से यह सहूलियतें मिल नहीं पाती थीं। अतः चौधरी साहब के मन में विचार आया कि एक ऐसे बैंक की स्थापना की जाये, जो केवल कृषि एवं ग्रामीण विकास की योजनाओं के लिए ही ऋण प्रदान करे। इसी दृष्टि से उन्होंने राष्ट्रीय कृषि एवं ग्रामीण विकास बैंक (नाबार्ड) की स्थापना की।

उर्वरकों तथा काले डीजल के दामों में कमी की गई, ताकि छोटे किसान भी इनका उपयोग कर अपना कृषि उत्पादन बढ़ा सकें। साथ ही कृषि यंत्रों पर उत्पाद शुल्क (एक्साइज ड्यूटी) में कमी की गई।

ग्रामीण बेरोजगारों के लिए "काम के बदले अनाज" तथा गांधी के सबसे प्रथम व्यक्ति (समाज के सबसे पिछड़े व्यक्ति) के उद्धार के लिए "अंत्योदय" जैसी योजनाओं की शुरूआत की गई। साथ ही विलासिता की वस्तुओं पर भारी कर लगाये गये।

कृषि जिन्सों-जैसे चावल, चीनी, खांडसारी आदि की अन्तर्राज्यीय आवाजाही पर लगी रोक हटवाई, ताकि उनकी मूल्यगत विषमता पर रोक लग सके।

एकाधिकारी घरानों पर लाइसेंस आबंटन के मामले में पाबंदियां लगाई गईं तथा पहली बार 120 ऐसी वस्तुओं के बड़े उद्योगों में उत्पादन पर पाबंदी लगाई गयी, जिनका उत्पादन लघु उद्योगों में सम्भव था।

बड़ी कपड़ा मिलों को हिदायत दी कि वह 20 प्रतिशत कपड़ा गरीब जनता के लिए बनाएं।

चौधरी साहब ने पहली बार बजट में कृषि के लिए आबंटित राशि में वृद्धि की

भारत के प्रधानमंत्री

जिस दिन चौधरी साहब ने भारत के प्रधानमंत्री पद की शपथ ली, उस दिन इस देश के करोड़ों दलितों और पिछड़ों में हर्ष की लहर दौड़ गई। उनका एक सपना पूरा हुआ, साथ ही सत्ता में भागीदारी का एहसास उनके मन में जागृत हुआ। चौधरी चरण सिंह को प्रधानमंत्री के पद पर काम करने का अधिक समय नहीं मिला किन्तु अल्प कार्यकाल में ही

उन्होंने जो कुछ किया, उससे इसी तथ्य की पुष्टि होती है कि यदि समय मिलता, तो वह इस देश के पिछड़ों और किसानों के लिए अपनी सामर्थ्य भर और भी बहुत कुछ करते।

प्रधानमंत्री के पद पर रहते हुए उन्होंने पहली बार देश में ग्रामीण पुनरुत्थान मंत्रालय की स्थापना की, जिसका लक्ष्य स्वतंत्र रूप से ग्रामीण विकास की सम्भावनाओं का आंकलन कर, उन्हें क्रियान्वित करना था। केन्द्र में सत्ता परिवर्तन के बाद इंका सरकार ने ग्रामीण पुनरुत्थान मंत्रालय को समाप्त कर, ग्रामीण विकास विभाग के नाम से कृषि मंत्रालय के अधीन कर दिया।

निर्भीक चिन्तक

एक राजनेता के रूप में चौधरी चरण सिंह की विशिष्ठता यह रही कि उन्होंने मूल्यहीनता की राजनीति को कभी प्रश्रय नहीं दिया। उन्होंने राजनीति के संक्रामक दौर में भी नैतिक मूल्यों पर बल दिया। उन्हें जोड़-तोड़ की राजनीति से सख्त परहेज था। जो उन्हें सही लगा, उसे कहने और करने में उन्होंने लाग लपेट से कभी काम नहीं लिया। और यही वजह रही कि वह रास्ता बनाने वाले रहे। जिन लोगों को उनका रास्ता उचित लगा, वह उनके साथ आ खड़े होते थे। जब भी उन्हें लगा कि उनके किसी साथी ने गलत रास्ता पकड़ लिया है, तभी उनका रास्ता उससे अलग हो जाता था।

सादगी और छल छंदों से रहित चौधरी चरण सिंह को जीवन में धोखा भी बहुत मिला किन्तु उन्होंने गांधी जी के सूक्त वचन "पाप से घृणा करो–पापी से नहीं" के अनुरूप "धोखे से घृणा करो– धोखेबाज से नहीं" पर अमल करते हुए हर उस व्यक्ति को पुनः अपना लिया, जो धोखा देने के बाद क्षमा-भाव से उनके पास आया।

उनकी ईमानदारी ने उनके अन्दर जिस निर्भीकता को जन्म दिया था, उसके चलते वह गलत बात पर बड़े से बड़े व्यक्ति का विरोध करने से नहीं हिचकिचाये। और ऐसा नहीं है कि राजनीति में बहुत ऊपर उठने के बाद उनमें यह विशिष्ठता आई हो, शुरू से ही उनका व्यक्तित्व ऐसा था।

बात 1959 की है। जनवरी में नागपुर में कांग्रेस का अखिल भारतीय अधिवेशन हो रहा था। रूस के बड़े-बड़े सहकारी कृषि फार्मों से प्रभावित पं० नेहरू ने भारत में भी सहकारी खेती का प्रस्ताव रखा। सहमति-असहमति के बावजूद सभी लोग उस प्रस्ताव के मूक समर्थक बने रहे, क्योंकि नेहरू जी के महिमा मंडित व्यक्तित्व के सामने विरोध की भाषा बोलने का साहस किसमें था!

लेकिन तभी एक अजूबा हुआ। पं० नेहरू के प्रस्ताव के विरोध में एक आवाज गूंजी और सारे सभा मंडल पर छा गई। यह आवाज थी उत्तर प्रदेश के तत्कालीन राजस्व मंत्री चौधरी चरण सिंह की। चौधरी साहब सहकारी खेती के विरोध में अपने अकाट्य तर्क

प्रस्तुत कर रहे थे, अब सभा भवन रह-रह कर तालियों से गूंज रहा था। इसके बावजूद प्रस्ताव पारित हो गया। किन्तु बाद में उस प्रस्ताव का क्या हश्र हुआ? कोई सुगबुगाहट भी नहीं हुई उसके बारे में।

27 मार्च 1960 को भारतीय वाणिज्य और व्यापार चैम्बर के कलकत्ता अधिवेशन में पं० नेहरू ने स्वयं स्वीकार किया कि, "सहकारी खेती का प्रश्न एक विवादास्पद विषय है। एक आदर्श के रूप में इसे भले ही मान लिया जाये किन्तु इसका कार्यान्वयन कई परिस्थितियों पर निर्भर है, जिसमें जनता की सहमति जरूरी है।

इसी तरह आपातकाल में उन्होंने 23 मार्च 1976 को उत्तर प्रदेश विधान सभा में नेता विरोधी दल की हैसियत से जो भाषण दिया था, वह अपने आप में एक ऐतिहासिक दस्तावेज है। भाषण में चौधरी साहब ने कांग्रेस सरकार को चेतावनी देते हुए कहा था–

"आप समझते हैं कि स्टीम इकट्ठी होती रहे बायलर में और कहीं कुछ नहीं होगा? होगा, अवश्य होगा, एक विस्फोट होगा, एण्ड दि कंट्री विल बी डूम्ड इन फ्लेम्स (और देश लपटों में घिर जायेगा।)"

आपातकाल में निरंकुश सत्ता के खिलाफ निर्भीक होकर ऐसे क्रांतिकारी विचार व्यक्त करना, क्रांतिकारी चिंतक के ही वश की बात थी।

इसी तरह चौधरी साहब ने 26 जुलाई 1983 को लोक सभा में पंजाब समस्या पर काम रोको प्रस्ताव पर बोलते हुए धार्मिक साम्प्रदायिकता से समझौता न करने की चेतावनी दी थी, साथ ही यह भी स्पष्ट कहा था कि "सरकार इस मसले को जल्दी हल करे। यदि देश के हितों को अपने हितों से ऊपर रखा जायेगा, तभी बात बनेगी, अन्यथा नहीं।"

उस समय कि जब भिंडरांवाला एक आतंक का पर्याय था, कोई उसके खिलाफ बोल नहीं रहा था। ऐसे माहौल में चौधरी चरण सिंह ने भिंडरांवाले की गिरफ्तारी की मांग की थी। इसका कारण यही था कि गांधी के सच्चे अनुयायी में गांधी जैसा ही आत्म बल था, जो किसी आतंक के सामने झुकना नहीं जानता था।

जातिवाद के घोर विरोधी

चौधरी चरण सिंह जातिवाद को भारतीय राष्ट्रीयता के लिए सबसे बड़ा खतरा मानते थे। उनका स्पष्ट विचार था कि "यह जातिवाद का ही परिणाम था कि हम भारतीयों ने सैकड़ों साल गुलामी का जुआ अपने कंधे पर ढोया। जातिवाद का जहर आज भी समाज को भीतर ही भीतर खोखला कर रहा है। जब तक जातिवाद का अंधेरा नहीं मिटेगा, राष्ट्रीय एकता का सूरज उदय नहीं होगा।"

चौधरी साहब ने अपने प्रारम्भिक जीवन से ही जातिवाद के विरोध में सोचा तथा उसे मिटाने के लिए प्रयास किया। 1939 में वह कांग्रेस विधायक दल की मीटिंग में एक प्रस्ताव लाये, जिसमें कहा गया था, "जो भी हिन्दू प्रत्याशी शैक्षणिक संस्था या लोक सेवा में प्रवेश प्राप्त करे, उससे जाति की बावत कुछ न पूछा जाये, केवल यह मालूम किया जा सकता है कि वह हरिजन है या नहीं।"

चौधरी चरण सिंह के ही प्रयत्नों से 1948 में उत्तर प्रदेश सरकार ने राजस्व विभाग के किसी भी पट्टे या रिकार्ड में जाति दर्ज न करने का आदेश दिया।

16 फरवरी 1951 को चौधरी साहब ने उत्तर प्रदेश कांग्रेस कमेटी की कार्यकारिणी की बैठक में यह प्रस्ताव रखा कि कांग्रेस का कोई सदस्य स्वयं को जाति के आधार पर बने किसी भी संगठन अथवा संस्था से नहीं जोड़ेगा। यह प्रस्ताव बहुमत से पारित हुआ।

चौधरी चरण सिंह ने 22 मई 1954 को भारत के तत्कालीन प्रधानमंत्री पं० जवाहर लाल नेहरू को एक पत्र लिखा था, जिसमें उनके उद्‌गारों से जाहिर होता है कि वह जातिवाद को देश का कितना बड़ा शत्रु मानते थे तथा उसके उन्मूलन के लिए किस दिशा-दृष्टि से सोचते थे।

उन्होंने पं० नेहरू को लिखा कि संविधान में संशोधन कर, ऐसी व्यवस्था की जाये, जिसके तहत राजपत्रित पदों पर उन्हीं युवक-युवतियों को चुना जाये, जो अपनी जाति से बाहर विवाह करने के लिए तैयार हों। पं० जवाहर लाल नेहरू ने चौधरी साहब के इस सुझाव के महत्त्व को तो स्वीकार किया किन्तु इसे "व्यक्तिगत स्वतंत्रता का हनन" कह कर दर गुजर कर दिया।

कांग्रेस के बड़े-बड़े नेता जाति सम्मेलनों में जाया करते थे। पं० नेहरू कश्मीरी ब्राह्मणों की सभा में जाते थे तथा कश्मीरी ब्राह्मणों के प्रति उनका अनुराग किसी से छिपा नहीं था। इसी तरह पं० कमलापति त्रिपाठी भी घोर ब्राह्मणवादी रहे हैं। दूसरी ओर चौधरी चरण सिंह कभी ऐसे सभा-सम्मेलन में नहीं गये, जिसका आयोजन जातिगत आधार पर हुआ हो, न ही उन्होंने किसी जातिगत संगठन की सदस्यता ग्रहण की। उल्लेखनीय है कि चौधरी साहब ने कभी जाट सभा के अधिवेशन में भाग नहीं लिया, साथ ही उन्होंने जाट हाई स्कूल बड़ौत के मुख्य अध्यापक तथा बलन्दशहर के जाट कॉलेज का प्रधानाध्यापक पद ठुकरा दिया था, क्योंकि इन संस्थाओं का नाम जाति सूचक था।

चौधरी चरण सिंह जातिवाद के कितने घोर विरोधी थे और उसे समाप्त करने के लिए किस हद तक जा सकते थे, यह तथ्य उनके मुख्यमंत्रित्व काल के एक निर्णय से स्पष्ट होता है। 1967 में मुख्यमंत्री बनने पर उन्होंने इस आशय का एक शासकीय आदेश पारित करवा दिया कि जो संस्थाएं किसी जाति विशेष के नाम से चल रही हैं, उनका शासकीय अनुदान बंद कर दिया जायेगा। इस आदेश के तुरन्त बाद अग्रवाल कॉलेज-महाराजा अग्रसेन कालेज में, रस्तोगी कालेज-महाराजा हरिश्चन्द्र कालेज में और जाट

कालेज जैसे नाम महर्षि दयानन्द और वैदिक कालेज जैसे नामों में बदल गये थे। यह काम कोई अन्य मुख्यमंत्री नहीं कर पाया। ऐसे काम चौधरी चरण सिंह जैसा संकल्पशील और निर्भीक व्यक्ति ही कर सकता था।

दरअसल चौधरी साहब शुरू से ही जाति की संकीर्णता से ऊपर उठे हुए थे। जब आगरा कालेज के छात्र थे, तब एक हरिजन लड़का उनका खाना बनाया करता था। गाजियाबाद में वकालत के दौरान तथा लखनऊ में मंत्रिकाल में भी उनका रसोईया हरिजन था।

इस सबके बावजूद यदि कोई व्यक्ति चौधरी साहब को जातिवादी कहने का दुःसाहस करता है, तो यह उसका दुराग्रह ही कहा जायेगा।

कुटीर उद्योग धंधों के विस्तार पर बल

चौधरी साहब की मान्यता थी कि गांवों-कस्बों में छोटे-छोटे उद्योग लगाकर ही बेरोजगारी का मुकाबला किया जा सकता है। पंडित जवाहर लाल नेहरू पश्चिमी देशों तथा रूस के बड़े कारखानों से अभिभूत थे। उन्होंने भारत के विकास के लिए भी वही बुनियादी ढांचा चुना। न जाने वह इस तथ्य को क्यों नजरअंदाज कर गये कि अंग्रेजों ने इस मुल्क को लम्बे समय तक गुलाम बनाये रखने के लिए यहां के कुटीर उद्योगों को चौपट कर दिया था। ढाका की मलमल और गाजीपुर के गाढ़े की जगह भारतीय बाजार को मेनचेस्टर और लिबरपूल के अंग्रेजी कपड़े से पाट दिया गया था।

पंडित नेहरू ने कृषि और कुटीर उद्योगों को सदैव हिकारत की नजर से देखा। हालांकि उन्हें अपनी इस भूल का अहसास हुआ किन्तु तब तक देर हो चुकी थी। आठ नवम्बर 1963 को दिल्ली में हुई राष्ट्रीय विकास परिषद की बैठक में उन्होंने अपनी भूल को यह कहते हुए स्वीकार किया--

"किसी अन्य वस्तु की तुलना में कृषि महत्वपूर्ण है, और इसमें कारखाने भी शामिल हैं, क्योंकि कृषि उत्पादन ही तमाम आर्थिक प्रगति की गति को निर्धारित करता है। कृषि ही प्रगति का आधार तैयार करती है। यदि हम कृषि में असफल होते हैं, तो हम उद्योगों में भी सफल नहीं होंगे। मैं इस बात पर इसलिए जोर दे रहा हूं, क्योंकि कृषि उद्योग की तुलना में अधिक महत्वपूर्ण है। इसका सीधा कारण यह है कि उद्योग कृषि पर निर्भर होते हैं। उद्योग निश्चय ही महत्वपूर्ण होते हैं किन्तु उनकी प्रगति तब तक सम्भव नहीं, जब तक कृषि, स्थायी और प्रगतिशील न हो।"

चौधरी साहब का विचार था कि भारत एक विपुल जनसंख्या वाला देश है। अतः यहां ऐसे उद्योगों को तरजीह नहीं दी जा सकती, जिनमें आदमियों की खपत कम हो और मशीन के जरिये ही सारा काम निपटा लिया जाए। भारत में ऐसे छोटे-छोटे कुटीर उद्योग

धंधों की जरूरत है, जिनमें उत्पादन में अधिक से अधिक लोगों की भागीदारी हो। साथ ही इन कुटीर उद्योगों को गांव कस्बों में ही स्थापित किया जा सके, ताकि कृषि उत्पादन को इनमें खपाया जा सके और इन्हें कच्चे माल की कोई समस्या न हो।

चौधरी चरण सिंह का विचार था कि अधिक से अधिक लोगों को जब रोजगार मिलेगा, तो उनकी क्रय शक्ति बढ़ेगी साथ ही कृषि भूमि पर बोझ कम होगा। चौधरी साहब कृषि भूमि पर बोझ कम करने के हिमायती थे। उनका तर्क था कि 1940 से पूर्व अमेरिका में खेती पर निर्भर जनसंख्या का प्रतिशत 23 था, वह घट कर पांच प्रतिशत रह गया। परिणाम यह हुआ कि पांचवें, छठे और सातवें दशक में अमेरिका के कृषि उत्पादन में लगातार बढ़ोत्तरी हुई।

चुनाव सुधार सम्बन्धी सुझाव

चौधरी चरण सिंह मानते थे कि निष्पक्ष चुनाव लोकतंत्र की आत्मा हैं। इस दृष्टि से वह भारतीय चुनाव प्रक्रिया में व्याप्त विसंगतियों के प्रति चिंतित रहते थे। उन्होंने भारत के चुनाव आयोग को इस सन्दर्भ में कुछ सुझाव भेजे थे।

इन सुझावों में चुनाव आयोग को प्रभावी और निष्पक्ष संस्था बनाने के लिए इस बात की अनुशंसा की गई थी कि चुनाव आयुक्त तथा चुनावी मशीनरी किसी भी स्तर पर सरकार से प्रभावित न हों। चुनाव आयुक्त के चयन के सन्दर्भ में उनका सुझाव था कि उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों की समिति की अनुशंसा पर चुनाव आयुक्त की नियुक्ति होनी चाहिए न कि केन्द्रीय मंत्रिमंडल की अनुशंसा पर। जब तक ऐसा नहीं होगा निष्पक्ष चुनाव केवल मृग मरीचिका ही बने रहेंगे। चौधरी साहब ने चुनावों में धन बल, भुज बल, पुलिस तंत्र तथा प्रशासन के दुरूपयोग को रोकने के सन्दर्भ में भी अनेक महत्त्वपूर्ण सुझाव चुनाव आयोग को भेजे थे। यदि उक्त सुझावों पर अमल किया जाये, तो चुनाव प्रक्रिया काफी हद तक दोष रहित हो सकती है।

वर्तमान में प्रासंगिकता

किसी व्यक्ति की महानता इसी तथ्य में निहित होती है कि वह रहे या न रहे किन्तु उसकी नीतियां और सिद्धांत, उसका दिखाया हुआ रास्ता, समाज-देश का पथ प्रदर्शन करता है। चौधरी चरण सिंह के सन्दर्भ में भी ऐसा ही है। आज चौधरी साहब हमारे बीच नहीं हैं किन्तु उन्होंने अपने जीवन में जिन सिद्धांतों का, मूल्यों का निर्माण किया, वह आज भी हमारा पथ प्रदर्शन कर रहे हैं और करते रहेंगे।

आज देश के सीमांत पर व्याप्त अशांति, आतंकवाद की कारगुजारियां, बेरोजगारों की फौज और भ्रष्टाचार जैसी समस्याओं को चौधरी साहब की नीतियों का अनुसरण कर दूर किया जा सकता है।

उन्होंने कांग्रेस सरकार को चेतावनी दी थी कि जिस तरह से पूर्वी राज्यों में ईसाई मिशनरियां सक्रिय हैं, यदि समय रहते उन पर रोक नहीं लगाई गई, तो वह दिन दूर नहीं कि जब वहां से भी अलगाववाद की आवाज उठने लगेगी। कांग्रेस सरकार ने उनकी चेतावनी अनसुनी कर दी थी, और परिणाम सामने है। गोरखालैण्ड और असम समस्या इसी लापरवाही का परिणाम हैं।

चौधरी साहब ने धर्म और राजनीति को अलग करने का सुझाव दिया था। उनका मत था कि धर्म के आधार पर गठित दलों को राजनीति में प्रवेश की इजाजत नहीं देनी चाहिए। पर वोट की राजनीति के चलते सरकार ने इस ओर भी कोई ध्यान नहीं दिया। पंजाब समस्या आज इसी अनदेखी का परिणाम है।

राम जन्म भूमि और बाबरी मस्जिद जैसे मसले भी इसी धार्मिक क्षुद्रता की उपज हैं। यदि कांग्रेस सरकार ने शुरू से धर्म को केवल धर्म तक सीमित रखा होता, राजनीति में उसकी दखलंदाजी पर वैधानिक रोक लगाई होती, तो आज हालात यह न होते, जो हैं।

आज देश में बेरोजगारी की भारी समस्या है। चौधरी साहब ने लघु एवं कुटीर उद्योगों को प्रोत्साहन देने की नीति पर बल दिया था, ताकि अधिक से अधिक लोगों को रोजगार मिल सके। साथ ही उन्होंने कृषि और किसान की हालत में सुधार की हिमायत की थी। दर असल इस देश में किसानों की विपुल संख्या है। यदि उनकी आर्थिक हालत में सुधार नहीं होगा, तो देश की आर्थिक प्रगति सम्भव नहीं है। जब तक किसानों की क्रय शक्ति नहीं बढ़ेगी, तब तक औद्योगिक उत्पादन की खपत भी सम्भव नहीं होगी।

आजादी के 40 साल बाद भी आज देश में भाषा के नाम पर दंगे हो जाते हैं। इस सन्दर्भ में चौधरी साहब ने संसद में भी कई बार चेतावनी दी थी कि जिस देश की एक भाषा नहीं होगी वह देश राष्ट्रीयता के तौर पर मजबूत नहीं रह सकता।

चौधरी साहब देश की सभी भाषाओं की उन्नति के पक्षधर थे किन्तु राष्ट्र को एकता के सूत्र में पिरोने के लिए वह यह जरूरी मानते थे कि जब तक हिन्दी को पूर्ण राष्ट्र भाषा का दर्जा नहीं दिया जायेगा तथा सरकारी काम-काज में उसका प्रयोग अनिवार्य नहीं बनाया जायेगा, तब तक राष्ट्रीय एकता के धागे मजबूत नहीं होंगे। साथ ही वह अंग्रेजी को गुलामी की प्रतीक तथा शोषकों की भाषा मानते थे।

जिस समय वह उत्तर प्रदेश में मुख्यमंत्री बने,तब उन्होंने सरकारी काम-काज में हिन्दी का शत प्रतिशत प्रयोग अनिवार्य कर दिया था, साथ ही कड़ाई से इस आदेश का अनुपालन भी कराया था। हिन्दी के सम्बंध में उनका विचार था कि:–

"राष्ट्र भाषा का स्थान केवल उसी भाषा को दिया जा सकता है, जिसकी शब्दावली, उच्चारण, लिपि और वर्णमाला अन्य प्रांतीय भाषाओं की शब्दावली के अधिक निकट हो, जिसकी लिपि सुगम और वैज्ञानिक हो। इन कसौटियों पर देखा जाये, तो राष्ट्रभाषा के आसन पर हिन्दी को ही आसीन किया जा सकता है।"

आज देश में भ्रष्टाचार के अनेक मामलों की गूंज है। सत्ता के शिखर पर बैठे लोगों पर खुले आम भ्रटाचार के आरोप लगाये जा रहे हैं और वे लोग सफाई देने को मजबूर हैं। चौधरी साहब कहते थे कि भ्रष्टाचार ऊपर से नीचे की ओर चलता है। यदि ऊपर के लोग (शीर्ष नेतृत्व तथा उच्च अधिकारी वर्ग) ईमानदारी का आचरण करें, तो नीचे के लोगों में स्वतः ही ईमानदारी आ जायेगी। यदि देश का शीर्ष नेतृत्व पूरी तरह ईमानदार रहा होता, तो आज फेयर फैक्स और बोफोर्स के धमाके तो क्या फुसफुसाहट भी सुनने में नहीं आती।

इस तरह आतंकवाद, अलगाववाद, साम्प्रदायिकता, भ्रष्टाचार, बेरोजगारी को दूर करने तथा देश की आर्थिक स्थिति को सुधरने के लिए यदि चौधरी चरण सिंह की नीतियों पर अमल किया जाये, तो राष्ट्र के हालात सुधर सकते हैं। चौधरी चरण सिंह की नीतियां आज इस भटके हुए राष्ट्र का दीप स्तम्भ (लाइट हाउस) की तरह मार्ग दर्शन कर सकती हैं। बस, आवश्यकता है उस दीप स्तम्भ की ओर देखने की, उससे दिशा निर्देश ग्रहण करने की।

•

अजय सिंह द्वारा किसान ट्रस्ट, दिल्ली, की ओर से प्रकाशित एवं जे.के. ऑफसेट जामा मस्जिद, दिल्ली-6 से मुद्रित।

सरकारी सेवाओं में किसान-संतान के लिए ५० प्रतिशत आरक्षण क्यों ?

चरण सिंह

नि:शुल्क वितरण के लिए

© किसान-ट्रस्ट, दिल्ली

सितम्बर 1984

अजयसिंह द्वारा, किसान-ट्रस्ट, 12, तुगलक रोड, नई दिल्ली-110011 के प्रकाशन-विभाग के लिए प्रकाशित ।

मुद्रित : विकास आर्ट प्रेस, शाहदरा, दिल्ली-110032

दो शब्द—

इस देश के प्रत्येक राजनीतिक दल का छोटा-बड़ा नेता प्रायः कहते सुना जाता है कि भारत ग्रामों में बसता है ; देहात का उत्कर्ष ही सच्चे अर्थ में भारत की तरक्की है और हम अपनी पूरी ताकत के साथ देश के समूचे देहात की आर्थिक उन्नति के काम में जुटे हैं। शासन की कुर्सी पर बैठा राजनीतिक दल तो बहुत दिन से ग्रामीण समाज तथा किसान के आर्थिक उत्कर्ष की सुनहरी तसवीर पेश करता आया है, किन्तु वस्तुस्थिति इसके ठीक विपरीत है। जिसके पास आँखें हैं, वह देहात में जाकर देख सकता है। नई-दिल्ली, उसका रेडियो-प्रसारण और टी० वी०—प्रोग्राम देश के देहात की तसवीर पेश नहीं करते।

आजादी की लड़ाई के दौरान काँग्रेस ने भी किसान और देहात की जनता के हितों की कसमें खाई थीं, किन्तु काँग्रेस का इतिहास इस बात की गवाही देता है कि उस पर भीतर और बाहर सदैव प्रभाव शहर के विभिन्न वर्गों के लोगों का ही रहा और देहात के प्रति उसकी सहानुभूति प्रायः कागजी ही रही।

काँग्रेस के इतिहास में बारदोली (गुजरात) और बरौदा (आगरा) के किसान-आन्दोलन अंग्रेजी-सरकार के कमर-तोड़क और काँग्रेस की महान् उपलब्धियाँ रहे हैं, किन्तु काँग्रेस के भीतर प्रभावशाली शहरी वर्ग के लोगों ने इन दोनों किसान-आन्दोलनों के नेताओं को, जनता की दृष्टि में गिराने के लिए उनके राष्ट्रीय चरित्र पर काली लकीरें खींचने की साजिश भी की। किसानों और गरीबों के लिए लाभकारी कानून बनाने और उनको सच्चे रूप में लागू करने की बात कहने वाले माननीय चौधरी चरणसिंह के साथ भी, काँग्रेस के शहरी वर्ग ने ऐसा ही आचरण किया। फिर भी आपने किसान और गरीब के समर्थन वाला अपना स्वर धीमा नहीं किया। सहकारी खेती, जमींदारी उन्मूलन, कर्जा विमुक्ति, अन्तरजातीय विवाह और पिछड़ी जातियों के उत्कर्ष जैसे सवालों पर आप नेहरू जी जैसे नेताओं से भी वैचारिक टक्कर लेते रहे और इस प्रकार काँग्रेस के भीतर अपने भविष्य को धूमिल बनाते रहे।

'सरकारी सेवाओं में 'किसान-संतान के लिए पचास फीसदी आरक्षण क्यों' नामक यह लेख सन् 1947 में इसी विचार को प्रकट करने के लिए लिखा गया था।

यह लेख एक ओर तो काँग्रेस के किसान-समर्थक कहे जाने वाले नेताओं को

बेनकाब करता है और दूसरी ओर चौधरी साहब की प्रगतिशील समाजवादी विचारक के रूप में तसवीर उजली करता है। इस लेख से पता लगता है कि सन् 1935 से ही, चौधरी साहब ने किसानों तथा समाज के गरीब वर्ग के लोगों की आर्थिक उन्नति की दिशा में कितनी गम्भीरता के साथ लिखना और सोचना प्रारम्भ कर दिया था।

कांग्रेस के नेता भी यह कार्य करते थे, किन्तु चौधरी साहब तथा उनमें अन्तर केवल इतना ही था और आज भी है कि जब कभी देहात के हितों का कोई मसौदा कांग्रेस के सामने विचारार्थ आता था तो चौधरी साहब उसके लेखकों तथा समर्थकों में होते थे और तथाकथित समाजवादी विचारक उसके विरोधियों में।

आगे, मैं, पाठकों पर छोड़ता हूँ। आप देखेंगे कि चौधरी साहब किसान, देहात, गरीब और पिछड़े वर्ग के आर्थिक तथा सामाजिक उत्कर्ष के बारे में कितनी गहराई के साथ सोचते रहे हैं ?

अजयसिंह
मैनेजिंग ट्रस्टी, किसान ट्रस्ट, दिल्ली

सन् 1931 की जनगणना के अनुसार वे व्यक्ति अथवा अर्जक (कमाने वाले) जो वास्तव में खेती के काम में लगे हैं, वे चाहे भूमि के मालिक हों अथवा काश्तकार, वे उन लोगों से अलग हैं जो या तो श्रमिक हैं या पूरी तरह अथवा सिद्धान्त रूप में जमीन के लगान से जीविका कमाते हैं; ये काश्तकार अथवा जमीन के मालिक ही हमारे प्रदेश की बड़ी जनसंख्या का भाग हैं, अर्थात् 57.75 प्रतिशत हैं। इनमें जब कृषि-मज़दूरों को शामिल कर लिया जाता है, तब वे 75.5 प्रतिशत हो जाते हैं। सन् 1941 की जनगणना में पेशेवर आँकड़े एकत्र नहीं किये गये थे, फिर भी यह विश्वास किया जा सकता है कि 1931 की अपेक्षा, इन आँकड़ों में, कोई ठोस परिवर्तन नहीं हुआ होगा। इसलिए यथार्थ में संयुक्त-प्रदेश में खेती में लगे वर्ग को ही जनता कहा जा सकता है। सरकार के समस्त विभागों का निर्माण इसी जनता के हितों को पूरा करने के लिए किया गया है। जनसंख्या का इतना बड़ा भाग होने के कारण, कोई भी व्यक्ति, यह सोच सकता है कि उत्तर-प्रदेश की सरकारी नौकरियों का प्रबन्ध, क़िसानों के बेटों द्वारा किया जाता होगा अथवा सरकारी नौकरियों में उनकी संख्या, उनकी जनसंख्या के अनुपात के हिसाब से होगी, लेकिन ऐसा बिल्कुल नहीं है; सरकारी-सेवकों के आँकड़े उनके अभिभावक या पिताओं के पेशे के आधार पर उपलब्ध नहीं हैं, किन्तु यह बात बिना किसी विरोधाभास के कही जा सकती है कि उनका अनुपात, सैनिक-सेवाओं के अतिरिक्त, किसी भी हालत में 10 प्रतिशत से अधिक नहीं है।

आँकड़ों पर आधारित तर्क भी ध्यान में रखने योग्य है। अधिक महत्वपूर्ण और यह बात कहने के लिए विवश करने वाला विचार, मैं, यह समझता हूँ कि किसानों और उस वर्ग में, जो सरकारी सेवाओं के लिए अधिकारी तथा दूसरे पदों के लिए व्यक्ति जुटाता है, सहानुभूति का अभाव अथवा विरोध विरासत से मिलता है। एक व्यक्ति के विचार उसके वातावरण के आधार पर बनते हैं, शिक्षा से उनमें कोई विशेष परिवर्तन नहीं होता, कभी-कभी वह उनको और मजबूत बनाती है। एक व्यक्ति का जीवन के प्रति दृष्टिकोण उसके माँ-बाप, उसका वातावरण, उसका व्यवसाय, अतीत में उसके कार्य, उसके वर्तमान के मित्र, परिचित और रिश्तेदार आदि बनाते हैं। साइमनहैरी का कथन है कि—"एक व्यक्ति के सामाजिक दर्शन का निर्माण उस समाज के प्रभाव से होता है जिसमें कि वह रहता है; एक कन्जर्वेटिव एम० पी० अपने सम्बन्ध, लिमिटेड कम्पनीज के डायरेक्टर्स, अपने क्लब के अपने समान मालदार सदस्य और शिकार, निशानेबाजी तथा मछली मारने आदि कामों के शौकीन अपने साथियों के साथ

रखता है। यह वह समाज है जो उसके अनुदार विचार या दर्शन का निर्माण करता है। उसकी जिन्दगी के तौर-तरीकों से यह बात सम्भव प्रतीत नहीं होती कि वह आम आदमी की वास्तविक समस्याओं को समझ सकेगा, उसकी राजनीतिक विचारधारा निश्चित रूप से उसके वर्ग का प्रतिनिधित्व करती है, जिससे उसका उद्‌गम हुआ है।" (वाइड पौरी एम० पी० पृष्ठ—193)

हमारे देश में वे जातियाँ, जिनके वंशज सरकारी सेवाओं में अधिकार जमाये हुए हैं, प्रायः वे हैं, जिनको अंग्रेजों द्वारा अप्रत्याशित महत्त्व और ख्याति प्रदान की गयी थी, इनमें साहूकार, बड़े-बड़े जमींदार, ताल्लुकेदार, आढ़ती, व्यापारी अथवा वे लोग हैं जो प्रायः इन लोगों द्वारा शामिल किये गये हैं, जिनमें वकील, डाक्टर और ठेकेदार आते हैं। इन जातियों ने, अंग्रेजों की अधीनता में, पिछले 200 वर्षों में जनता का हर प्रकार से शोषण किया था। इन वर्गों के हित और विचार, पूर्णतः स्पष्ट रूप से, जन-समाज के विरोधी हैं। शहर निवासी गैर-कृषि-समाज के व्यक्ति का सामाजिक दर्शन, देहात के किसान-समाज में पैदा हुए व्यक्ति से पूर्णतः भिन्न होता है।

पंजाब की एक एसोसिएशन द्वारा स्टेच्युअरी कमीशन को दिया गया एक प्रतिवेदन कहता है कि "भारत में शहर और कस्बों में रहने वाले व्यापारी वर्ग तथा खेतिहर जातियों में एक बहुत बड़ी दरार है।" तत्पश्चात् उसने आयोग पर, समस्त संभावित वल के साथ, यह प्रभाव डालने का प्रयास किया कि "शहरी मध्यम वर्ग जो पैसा उधार देने वाले वर्ग के बहुत नजदीक है अथवा उसका अंग है, कृषक-वर्ग के साथ कोई सहानुभूति नहीं रखता और यह कि दोनों वर्गों के हित परस्पर सीधे विरोधी हैं। इस प्रकार की शिक्षा पाया हुआ शहरी मध्यम-वर्ग, किसान वर्ग को, केवल खेत जोतने के योग्य ठहराता है; खाद्यान्न उत्पादन के योग्य मानता है; सरकार को राजस्व देने के उपयुक्त सोचता है, अपने उद्देश्यों की पूर्ति का माध्यम समझता है और हर प्रकार से शोषण का आधार समझता है।" कुछ लोगों के कानों को, प्रतिवेदन की भाषा कुछ कठोर लग सकती है, किन्तु इस बात का कोई खंडन नहीं है कि शहरी लोग, किसान वर्ग की अपेक्षा, स्वयं को बहुत ऊँचा मानते हैं। पंजाब एसोसिएशन का विचार सही है। इस बात का प्रमाण यह तथ्य पेश करता है कि एक दिन, मैं, सरकारी सेवाओं में किसान वर्ग के लिए अधिक स्थानों की माँग-विषयक अपने विचार के बारे में, उत्तर-प्रदेश के एक बड़े शहर से आये विधायक से, बात कर रहा था तो उनकी तुरन्त प्रतिक्रिया थी—"तब खेतों में हल कौन चलायेगा?" प्रायः देखा जाता है कि शहर में पला गैर-किसान वर्ग का व्यक्ति गांव के एक गरीब भारतीय को देहाती, गँवार, दहकानी आदि उसी घृणाभरे स्वर में पुकारता है, जिसमें स्वर्ग से सीधा आया अंग्रेज, हम समस्त भारतीयों को, बिना किसी भेदभाव के, नेटिव

तथा निगर कहकर पुकारता था ।

इस सच्चाई को मानना पड़ेगा कि जिस वातावरण में देहात का कामगर रहता है, वह शहर के वातावरण से भिन्न होता है। "खेती एक विशेष प्रकार का नागरिक, दिमाग, एक विशेष रुझान तथा जीवन की एक विशेष दिशा उत्पन्न करती है" और यह किसी औद्योगिक व्यवस्था द्वारा उत्पन्न की गई रुझान, दिशा तथा विचार से अलग होती है। काउंण्ट रिचर्ड ओडन ओ कलर्जी अपनी किताब 'टोटेलिटेरियन स्टेट अंगेस्ट मैन' में किसान के विषय में कहता है—"वह प्रकृति के बीच में, प्रकृति के साथ, पशु और पेड़-पौधों का सहजीवी बनकर रहता है। इस कारण, दुनिया के विषय में उनका अन्दाज, उस शहरी आदमी से, जो प्रकृति से बहुत दूर रहता है, जो अपने अधिकांश दिन विभिन्न प्रकार की मशीनों के बीच में गुजारता है और प्राय: स्वयं आधा मशीन बन जाता है, से सिद्धांतत: बहुत भिन्न होता है। किसानों की मौसम के समान मंदगामी रफ्तार होती है, मोटर कार के समान तेज गति नहीं। संसार तथा वस्तुओं के प्रति उसका रुख सहज होता है, मशीनवत् नहीं।"

यही कारण है कि किसान-वर्ग से भरे हुए देश में एक व्यक्ति, जिसने किसान जीवन के दुखद अनुभवों को भोगा है और जिसे देहाती क्षेत्र के वातावरण के अनुभव का श्रेय प्राप्त है, के अधिक सफल प्रशासक तथा कानून का व्याख्याता होने की संभावना है। क्योंकि अन्यों की अपेक्षा, उसके जीवन के मूल्य, उन लोगों के अधिक अनुरूप होते हैं, जिनके कार-बार की व्यवस्था का दायित्व उसको सौंपा जाता है। केवल वह ही ग्रामीणों की मानसिकता को भलीप्रकार समझ सकता है और उनकी आवश्यकताओं को महसूस कर सकता है। उसको किसानों के उद्देश्यों का भी ज्ञान होता है और ग्रामीण-जीवन के अभावों का भी। सरकारी सेवाओं का अनुवंशक या क्रम-परम्परागत संगठन, जैसा कि आजकल है, और जिसका निर्माण अधिकतर शहरी समाज की संतानों, दुकानदारों, साहूकारों, किराये की राशि पर निर्भर करने वालों से हुआ है, अपने सुन्दर इरादों के बावजूद, कृषि-प्रधान इस प्रदेश का शासन, जनहितों की रक्षा करते हुए नहीं चला सकता। इन वर्गों से आया अधिकारी साधारण वर्ग के समाज के साथ घुलमिल नहीं सकता और न उसके दु:ख-दर्द की नब्ज को जान सकता है। गाँव के रहने वाले आदमी या किसान की भावनाओं के साथ उसको कोई सहानुभूति नहीं होती। उसके समस्त हित तथा सहानुभूतियाँ दूसरी ओर होती हैं। ये अचेतन रूप से ही उसको ऐसा दृष्टिकोण अपनाने के लिए अनुप्रेरित करती हैं; अत: वह उसी वर्ग के हितों की रक्षा करता है, जिससे वह स्वयं आया हुआ होता है। उक्त वर्ग से आये किसी अधिकारी अथवा विधायक से यह आशा करना कि वह समस्याओं के ऐसे सही समाधान की बात सोचेगा, जिसका परिणाम उसके वर्ग-हितों की समाप्ति हो

अथवा उनको बहुत बुरी तरह प्रभावित करता हो, मानव-मस्तिष्क पर अधिक बोझ डालना होगा। उत्तर-प्रदेश के शिक्षा-मंत्री माननीय सम्पूर्णानंद जी के इस विचार से मुझे बल मिलता है। वह कहते हैं—"न्यायाधीश तथा विधान-निर्माताओं को इरादतन अनुचित होने की आवश्यकता नहीं है। मनुष्य होने के नाते, वर्गहितों तथा जातीय सम्बन्धों द्वारा उन पर लगाई गई सीमाओं से ऊपर उठ सकना उनके लिए असम्भव होगा" (व्यक्ति और समाज, पृष्ठ 121-122)

जिन लोगों को कानूनी अदालतों का थोड़ा-सा भी अनुभव है, वे समाज के विभिन्न वर्गों से आये न्याय-अधिकारियों के रवैया तथा आचरण का अन्तर, अपने वर्ग के संदर्भ में, पूरी तरह जानते हैं। समान परिस्थितियों वाले मुकदमे में ताल्लुकेदार अथवा साहूकार परिवार से आये न्यायाधीश की प्रतिक्रिया कृषि-परिवार के न्यायाधीश से बहुत भिन्न होती है। जिन लोगों के पास देखने के लिये आंखें हैं, वे "दि पंजाब पीजेन्ट इन प्रोस्पेरिटी एण्ड इन डैट" (डार्लिंग, 1932) के लेखक के साथ पंजाब के सिविल कोर्ट्स द्वारा की गई बरबादी पर अवश्य दुखी होंगे। इन कोर्ट्स पर ऐसे लोगों का अधिकार था जिनका अधिक जीवन शहरों में व्यतीत हुआ था और जो गाँवों के बारे में कुछ भी नहीं जानते थे और वे प्राय: सूदखोरों का पक्ष, यदि उनके साथ उनकी रिश्तेदारी नहीं है तो सजातीय होने के नाते, लिया करते थे। न्यायालयों में, विशेषत: माल के मुकदमों में. किसानों को मालूम होता था कि उनका विरोधी पल्ला बहुत भारी है, यह निश्चित है कि गैर-किसानों ने, अपने वर्ग-हितों की रक्षा के लिए, शासन चलाया है। मैं इस तर्क को, 'ब्रिटिश लीगल जरनल' के एक उद्धरण से पुन: प्रमाणित करना चाहूंगा—

"यह मान्यता बड़ा बल पकड़ती जा रही है कि यदि न्यायाधीशों को अपना कार्य संतोषजनक तरीके के साथ करना है तो उनको उस कानून का, जिसको वे लागू करते हैं, केवल व्यावहारिक ज्ञान ही नहीं होना चाहिये, वरन् जिन लोगों के मुकदमों का फैसला वे करते हैं, उनकी परेशानियों तथा समस्याओं की जानकारी भी होनी चाहिये। यह कहा जाता है कि कृषि-प्रधान जिले के न्याधीशों की एक बैंच, किसी खान वाले शहर एवं किसी औद्योगिक केन्द्र पर वर्तमान परिस्थितियों को समझने में असफल हो सकती है, और समान रूप से शहर के आदमी कृषि-समुदाय की समस्याओं को समझने में चूक कर सकते हैं।"

ऊपर के निष्कर्ष गैर-न्यायिक अधिकारियों के विषय में भी सही हो सकते हैं। अनावृष्टि, बाढ़ अथवा ओलावृष्टि के कारण हुई बरबादी के विषय में नहर तथा माल-विभाग के कृषि-उद्गम तथा गैर-कृषि-उद्गम वाले अधिकारियों द्वारा समान परिस्थितियों में पेश किए गए माफी के तखमीनों को देखने का यदि कोई कष्ट करे तो उसको चौंका देने वाले अन्तर दिखाई पड़ेंगे। गैर-कृषि-उद्गम वाले लोग किसानों की दुर्दशा को देखने वाली आँख नहीं रखते। उनका आर्थिक आधार,

उनकी सम्पूर्ण मानसिक सर्जना, सही तसवीर पेश करने में बाधक बन जाती है। सरकार का, कृषि-विभाग असफल क्यों रहा है ? इसका एक महत्वपूर्ण कारण इस तथ्य में छिपा हुआ है कि इसके अधिकारी प्राय: ऐसे लोग रहे हैं जिनके परिवारों का कई पीढ़ियों तक, खेती के साथ कोई सम्बन्ध नहीं रहा है, साथ ही जिनके लिए इस विभाग में आने से पहले कृषि एक सीलबन्द किताब के समान थी और यही कारण है कि वे लोग अयोग्य कृषि-विशेषज्ञ रहे, उर्वर कल्पना रहित और सहानुभूतिहीन अधिकारी बने रहे। कृषि-विभाग में ऐसे अधिकारी वर्तमान हैं जो गेहूं तथा जौ के पौधे में अन्तर नहीं कर सकते और नहर-विभाग में ऐसे अधिकारी हैं जो यह नहीं जानते कि किस समय और किस फसल में कितनी बार पानी देना चाहिए ? यही बात कोआपरेटिव तथा ग्रामीण विकास-विभाग की अनेक शाखाओं की विभिन्न कार्यवाहियों के विषय में कही जा सकती हैं और यह देख कर दु:ख होता है कि 1937 में कांग्रेस-मंत्रालय का शुभागमन भी इस स्थिति में कोई सुधार नहीं ला सका। यह नितांत लाभदायक हो सकता है यदि हम शीघ्रातिशीघ्र यह समझ लें कि केवल वही व्यक्ति, जिसकी जड़ें देहात में हैं, उन तथा अन्य विभागों को, सफल तथा सार्थक बना सकता है। अत: एक व्यक्ति के लिए ग्रामीण जीवन में अभिरुचि होना, सरकारी-सेवा में चयन के लिए एक मानदंड बन जाना चाहिए और सेवा में संलग्न व्यक्ति की योग्यता की कसौटी भी यही आधार माना जाना चाहिये / माननीय कैलाशनाथ काटजू मंत्री जस्टिस एवं को-आपरेटिव द्वारा उत्तर-प्रदेश के लिए बनाई गई को-आपरेटिव योजना पर टिप्पणी करते हुए मि0 श्रीधर मिश्र एम. ए., एम. कॉम. 29 दिसम्बर 1946 के लीडर में इस प्रकार लिखते हैं—

'अन्त में यह कहा जा सकता है कि को-आपरेटिव विभाग में व्यक्तियों के चयन की प्रणाली में भी परिवर्तन की आवश्यकता है। शहर के साहब लोग, जो सम्भवत: देहात में कभी पिकनिक, अथवा स्थान-भ्रमण तथा ग्रामीण अंचल देखने के उद्देश्य से भले ही गये हों, वे शैक्षिक दृष्टि से कितने ही योग्य भले ही हों, देहात के लोगों की परेशानियों को नहीं समझ सकते, न उनका विश्वास एवं समर्थन पा सकते हैं, देहात में संलग्न समाज-सुधारक के लिये यही नितांत आवश्यक तथा महत्वपूर्ण गुण है, अत: इन सेवाओं के लिए चयन, पूरी तरह उन लोगों में से किया जाय, जिनका सम्बन्ध देहात के क्षेत्रों के साथ है और जो अब तक ग्राम-जीवन के साथ अपना सम्पर्क कायम किये हुए हैं। ये ही, वे व्यक्ति हो सकते हैं, जो किसी भी ग्राम-पुनर्गठन-आन्दोलन के लिए, ग्रामीण समाज में, बिना किसी शंका-संदेह तथा विरोधी भावना उत्पन्न होने का मौका दिये, आन्दोलन के प्रति, अनुकूल चेतना पैदा कर सकते हैं।"

मेरी दृष्टि में, यह मत कि एक व्यक्ति के विचारों का निर्माण उसके आय के स्रोतों के आधार पर होता है, उस समय अन्तिम रूप से निश्चित हो जाता है,

जब यह कहा जाता है कि विगत पंजाब लेजिस्लेटिव असेम्बली के, गैर कृषि-वर्ग अथवा शहरी क्षेत्रों से आए कांग्रेस-दल के समस्त सदस्यों ने, मौलाना अबुल कलाम आजाद के स्पष्ट निर्देशों के बावजूद, बंधक-भूमिवापिसी तथा कृषि-विपणन विधेयकों' को समर्थन नहीं दिया। अपने आपको जन-सेवक तथा कांग्रेसी कहने वाले लोगों का जब यह हाल है तो उन लोगों से क्या आशा की जा सकती है जो न तो जन-सेवक हैं और न काँग्रेस-जन, और जो प्राय: विभिन्न विभागों में नौकरियां प्राप्त कर लेते हैं और उनका जीवन में एक सुनिश्चित उद्देश्य केवल अपनी इच्छाओं की पूर्ति एवं चेतन तथा अचेतन रूप से अपने समुदाय के हितों की रक्षा करना होता है। इस समय, जबकि हमारे नेताओं ने ग्रामों को पुनर्जीवित करने तथा किसान एवं श्रमिक-राज्य स्थापित करने का इरादा किया है, इस हालत पर विचार कर लिया जाय। मार्क्स ने इस विचार का प्रतिपादन किया है कि 'जो वर्ग राज्य पर शासन करता है, वह हमेशा अपनी शक्ति का प्रयोग अपने वर्ग-हितों की रक्षा के लिए करेगा'। यद्यपि एक सार्वभौम सिद्धान्त के रूप में यह विचार असत्य हो सकता है क्योंकि इस संसार में शाश्वत सिद्धान्त प्राय: नहीं होते, फिर भी मार्क्स का मत, एक बड़ी सीमा तक, सत्य है।

यह कथन स्वयं-सिद्ध है कि सरकार के विचार एवं नीतियों की कार्यरूप में परिणति उनसे अनुप्राणित व्यक्तियों के माध्यम से ही हो सकती है। सच बात यह है कि उद्देश्य की पूर्णता के लिए भावना का महत्व है, शब्दों का नहीं; शब्दों को आसानी के साथ तोड़ा-मरोड़ा जा सकता है। एक अफसर के अधिकार को, भले ही अनेक परिपत्रों, कानूनों तथा उप-कानूनों द्वारा सीमित करने का प्रयास करें, फिर भी अपने विवेक से काम करने की काफी गुंजाइश उसके पास बच रहती है। इस बात को तुरन्त स्वीकार किया जा सकता है कि एक अधिकारी का विवेक प्राय: उसकी मानसिकता तथा वैयक्तिक सम्पर्कों से अनुशासित होता है। उसकी अभिरुचियाँ अथवा पक्षपात, चेतन अथवा अचेतन रूप में, उसके अपने या अपने समुदाय के हितों से अनुप्रेरित होते हैं। इन वैयक्तिक अथवा वर्ग-सम्पर्कों की संकीर्ण चेतना के फलस्वरूप, वर्तमान सरकार तथा अतीत की अनेक सरकारों द्वारा, दुर्दशा में फंसी जनता को मुक्ति दिलाने के लिए जो प्रयास किये गए थे, वे प्रायः व्यर्थ हो गए। इसलिए एक लोकप्रिय सरकार को यह शोभा देता है कि वह केवल ऐसे व्यक्तियों को नियुक्त करे जो उसकी आकांक्षा तथा अभिलाषाओं को निष्ठापूर्वक जनसमाज तक पहुँचा दें, तात्पर्य यह है कि यहाँ से आगे विशेषत: इस कृषि-प्रधान प्रदेश में, ग्रामीण मानसिकता वाले व्यक्तियों को, अधिक मात्रा में सरकारी नौकरियों में स्थान दिया जाय।

यदि सार्वजनिक सेवाओं में ग्रामीण क्षेत्रों से आये व्यक्तियों की संख्या बढ़ाई जाती है तो केवल राज्य का प्रशासन ही वाँछित भावना के अनुरूप न चलेगा, वरन् उसकी कार्यकुशलता भी बढ़ जायेगी। इससे उसको चारित्रिक

दृढ़ता तथा दृष्टि भी मिलेगी जो किसी अन्य स्रोत से प्राप्त नहीं हो सकती। इसका कारण यह है कि किसान-बेटा जिस वातावरण में पलता है, उससे उसको दृढ़ माँसपेशियाँ, एक आन्तरिक स्थायित्व, चेतना की मजबूती और प्रशासन की क्षमता प्राप्त होती है, इनको प्राप्त करने का शुभावसर गैर-किसान-संतान अथवा शहरी नागरिक को नहीं मिलता। खेती एक ऐसा व्यवसाय है, जहाँ प्रकृति के साथ संघर्ष में एक किसान को, धैर्य एवं अध्यवसाय के पाठ रोजाना पढ़ने पड़ते हैं, फलत: उसमें दृढ़ता तथा सहनशीलता उत्पन्न हो जाती है। इससे एक ऐसे चरित्र का निर्माण होता है जो किसी अन्य व्यवसाय से नहीं हो सकता। एक किसान-पुत्र में निश्चयों को मूर्त-रूप देने की शक्ति और दृढ़ता होती है, जिसका अभाव प्राय: गैर-किसान सन्तानों में देखने को मिलता है। किसान के बेटे का हाथ तथा दिल, विपत्ति के समय में काँपेगा नहीं, पर शहर के कोमल व्यक्ति डगमगा सकते हैं। किसान का बेटा, अपने शहरी साथी ऑफिसर की समता में, अधिक साधारण, कम बनावटी एवं ऐश तथा आराम का कम अभ्यस्त होता है। अत: किसी आदेश के प्रसारण में ही नहीं, बल्कि उसको पूरा करने की सीमा तक, उस पर विश्वास किया जा सकता है। वह धोखा देना नहीं जानता, और न सफलतापूर्वक धोखा दे सकता है, क्योंकि उसका तथा उसके पिता का बचपन जमीन, पेंड़-पौधे तथा पशुओं के साथ व्यतीत हुआ था, जो कभी झूठ नहीं बोलते, जबकि एक गैर-कृषक तथा उसका बेटा अपनी जीविका-अर्जन के कार्य में, ऐसे लोगों के सम्पर्क में आता है, जो एक-दूसरे से आगे निकलने की स्पर्धा में झूठ बोलने हैं तथा छल-कपट का व्यवहार करते हैं। यह भी कहा जा सकता है कि शहरी नागरिक की संतान की अपेक्षा किसान का बेटा भ्रष्टाचार के मार्ग पर कम बढ़ता है क्योंकि उसके जीवन-निर्वाह का स्तर सामान्य होता है, उसके आराम का तरीका भी सहज होता है और उसका काम थोड़े से धन से चल जाता है। आरामतलब वातावरण में पले शहरी व्यक्ति को, जीवन-निर्वाह के लिए अधिक धन की आवश्यकता होती है। किसी तर्क में जीतना कठिन कार्य हो सकता है, किन्तु सही आलोचना का जवाब "अमेरिकन बिजनेस मैंस कमेटी ऑन एग्रीकल्चर" के विचार से दिया जा सकता है। इस नाम से ही ज्ञात होता है कि इस कमेटी में कोई किसान नहीं था। इस कमेटी का विचार इस प्रकार है—

"सामाजिक दृष्टि से देहाती जीवन में वे अनेक क्षमताएँ हैं जो अन्य किसी से उपलब्ध नहीं हो सकतीं। सम्भवत: यह बात स्पष्ट रूप से प्रमाणित नहीं हुई कि देहात के वातावरण में विकसित मानव, शहरी वातावरण में विकसित व्यक्ति से अधिक अच्छा है, यद्यपि इस बात की सच्चाई में संदेह की गुंजाइश कम है।"

(पृष्ठ 152)

इसके लिए, मैं, एक अन्य निर्दोष प्रमाण-पत्र प्रस्तुत करना चाहता हूँ— "लंदन में बढ़ती हुई आबादी का अध्ययन करते हुए सर हरबर्ट लैवल्यू स्मिथ

ने एक आधी शती से पहले कहा था कि "देहात से शहर में आने वाला व्यक्ति शारीरिक दृष्टि से विशाल होता है और उनकी नितांत कीमती मानसिक योग्यताओं का अनुमान इस बात से किया जा सकता है कि विशेष प्रतिष्ठा तथा विशेष दायित्वपूर्ण नौकरियों के लिए लंदन में देहाती क्षेत्र से आया व्यक्ति अधिक पसन्द किया जाता है।"

"लंदन को सशक्त तथा मजबूत देहात से उमड़ने वाला जनसमाज बनाए हुए हैं—बड़े-बड़े शहरों में, जीवन की विषम परिस्थितियों का परिणाम है कि माँसल शक्ति तथा क्षमता क्षीण हो जाती है। लंदन निवासियों की दूसरी पीढ़ी की समता में निरन्तर काम करने की उसकी क्षमता कम है और तीसरी पीढ़ी दूसरी की अपेक्षा हीन है।"

एक दूसरा तर्क भी है। जमीन जोतने वाला ही कर भार को ढोता है। क्योंकि सम्पत्ति का वह एकमात्र उत्पादक है, अस्तु, समस्त कर अंततः उसके सिर पर ही पड़ते हैं। जहाँ तक सीधे करों का प्रश्न है, उसे भूमि-राजस्व, लगान तथा आबपाशी-कर राज्य-सरकार को देना पड़ता है। उक्त राशि के भुगतान होने के बाद, उस पर कुछ फालतू नहीं छोड़ा जाता और उसके पास जमीन केवल पाँच बीघा तक ही रहती है। दूसरी ओर गैर-किसान को केन्द्रीय सरकार को आयकर देना पड़ता है, बशर्ते कि उसकी आमदनी रु० 2000 प्रतिवर्ष से अधिक हो। दोनों के भार का अन्तर इतना प्रामाणिक है कि उसके विश्लेषण की आवश्यकता नहीं है। यह घोर अन्याय उस समय अधिक बढ़ जाता है, जिस समय यह बात सामने आती है कि अन्ततः किसान से वसूले धन का अधिक हिस्सा, वेतन के रूप में, उनकी जेबों में चला जाता है, जो उसकी अपनी सन्तान नहीं हैं। इस प्रकार, एक रूप से, किसानों के खेतों से चूसा गया पानी उसके गाँव की ओर न जाकर उपजाऊ वर्षा के रूप में, शहरों की ओर चला जाता है। इस स्थिति में यह दावा करना. क्या बेतुका माना जायेगा कि किसानों से करों के रूप में वसूला गया पैसा, उनके बेटों के वेतन के रूप में, उनको लौटा देना चाहिए।

सरकारी नौकरियों में किसान-सन्तानों के आरक्षण के प्रश्न का औचित्य इस बात से भी न्यायोचित प्रतीत होता है कि वे शैक्षिक दृष्टि से पिछड़े हुए हैं, इसके लिए वे स्वयं उत्तरदायी नहीं हैं, बल्कि राज्य तथा समाज उत्तरदायी है। प्राइमरी स्कूलों के अतिरिक्त सभी शिक्षा-संस्थाएँ शहरों में होती हैं, इन संस्थाओं में गैर-कानूनी फीसें ली जाती हैं और इसके अलावा शहरों में भोजन तथा आवास की व्यवस्था बड़ी खर्चीली होती है, जो किसी प्रकार गुजारा करने वाले ग्रामीण किसान की आर्थिक क्षमता से परे होती है। यद्यपि, माध्यमिक स्तर तक, शिक्षा निःशुल्क तथा राजकीय दायित्व होनी चाहिए। इन संस्थाओं में भी देहात के छात्रों के दाखिले उसी हालत में होते हैं, जब पहले शहर से आये बालकों के हो जाते हैं। यहाँ तक कि कानपुर का कृषि-कालिज, जिसकी स्थापना ही ग्रामीण

तथा किसान-सन्तानों के हितों की रक्षा के लिए की गयी थी, इस बात का अपवाद नहीं है। ऐसा क्यों है ? और इससे हमको आरक्षण के पक्ष में एक तर्क और प्राप्त हो जाता है। एक बात और उल्लेखनीय है, ग्रामीण बालकों को प्रतिशत प्रदान करने की शक्ति भी 100 में से 90 फीसदी तक गैर-कृषक तथा शहर से आये व्यक्तियों के हाथ में होती है। तमाम महत्त्वपूर्ण स्थान उन लोगों की मुट्ठी में हैं जिनका खेतिहर किसानों के साथ न कोई सम्बन्ध है, न उनमें कोई रुचि। उदारता का प्रारम्भ सदैव ही घर से होता आया है। जिनके हाथ में किसी के साथ पक्षपात करने की क्षमता है, वे अपने रक्त के सम्बन्धियों अथवा आर्थिक-हितों से सम्बद्ध व्यक्तियों के साथ सहानुभूति प्रदर्शित करेंगे। परिणामतः किसान-पुत्र के पास नौकरी पाने के लिए इस प्रकार के सम्बन्धों का अभाव है, यह सुविधा अन्यों को प्राप्त है। प्रायः यह देखा गया है कि कम योग्य व्यक्ति को नौकरी मिल जाती है, क्योंकि ग्रामीण की सन्तान किसी ऊँचे स्थान पर बैठे व्यक्ति की सिफारिश पाने में असमर्थ रहती है। अतः खुली प्रतियोगिता की यह पद्धति, कई मामलों में, सार्थक नहीं है। इसका सत्य के साथ कोई सम्बन्ध भी नहीं है, अतः इसको समाप्त हो जाना चाहिए।

इन्हीं कारणों की वजह से, मैं, प्रदेश के प्रशासन में, उस वर्ग के आरक्षण की बात करता हूँ जिसको अभी तक, अपने उचित अनुपात से बहुत कम भाग, प्राप्त हुआ है और जिसका मसला अभी तक उपेक्षित रहा है।

जो लोग इस प्रस्ताव के विरोधी हैं, वे यह कह सकते हैं कि कृषक-वर्ग परम्परा से ही कुछ निश्चित जातियों से भरा हुआ है, अतः उनके आरक्षण का अर्थ कुछ जातियों के लिए आरक्षण होना है और यह एक रूप में साम्प्रदायिक कार्य होगा, जिसको बढ़ाने की अपेक्षा घटाना चाहिए। यथार्थ में, इस प्रस्ताव को साम्प्रदायिक कहना लोगों को अँधकार में रखना है। साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व यथार्थ में धर्म तथा जन्म के आधार पर निश्चित हुई जाति पर आधारित होता है। यदि कोई चाहे तो इसको व्यावसायिक, वृत्तिमूलक अथवा पेशापरक प्रतिनिधित्व पुकार सकता है, किन्तु कल्पना के किसी भी छोर तक इसको साम्प्रदायिक नहीं कहा जा सकता। जहाँ तक, मनुष्य एक इन्सान है, वहाँ तक एक व्यक्ति में दूसरे से अन्तर अवश्य रहेगा। विभिन्न आर्थिक व्यवस्था में संलग्न व्यक्तियों में अन्तर का होना मानव-समाज का स्वाभाविक विकास है। मानव समाज को, एक निर्जीव समता की स्थिति में नहीं लाया जा सकता और ऐसी पूर्णता प्राप्त करने का प्रयास भी वांछनीय नहीं है। इसका निर्णय हमको करना है कि क्या हम, अपने समाज की संरचना अथवा अपने प्रदेश या राष्ट्र के प्रशासन में, धर्म अथवा जाति को, आदमी तथा आदमी अथवा उसके कार्य एवं आर्थिक हितों के बीच, निर्णायक एवं विशिष्ट आधार मानने के लिए तैयार हैं अथवा नहीं ? जन्म पर आधारित जाति का युग समाप्त हो गया है, इसका अन्त

हो ही जाना चाहिए। प्रारम्भ में भी जाति का निश्चय कार्य या पेशे के आधार पर होता था, बहुत बाद में आकर वह रूढ़िबद्धता को प्राप्त हुई और जन्म के साथ सीमित हो गई। यह सामान्य विचार का विषय है कि लोग अपनी वंशानुगत जाति तथा धर्म के बिल्ले के बावजूद, यदि समान जीवन परिस्थितियों वाले वातावरण में पलते हैं, तो समान रूप से आचरण करते हैं और अपने समान आर्थिक सम्बन्धों के कारण, विशेष व्यवसाय के अनुरूप, एक-सी मनोवृत्ति विकसित कर लेते हैं। मेरा विश्वास है कि कम-से-कम वे लोग जो वर्ग-संघर्ष में विश्वास करते हैं और जिन्होंने हमेशा किसानों तथा मजदूरों के हितों का समर्थन उनके शोषकों के विरोध में किया है, उनको इस समेत प्रत्येक ऐसे कदमों का समर्थन करना चाहिए जो जनता के हितों की रक्षा करते हैं। जन्म के स्थान पर, पेशे पर बल देने से, आधुनिक शक्तियों के विकास को आधार मिलता है। समाजवादी पुकार में संदेह करने वालों को विश्वास दिलाने के लिए मैं सोवियत संघ का उदाहरण दे सकता हूँ। वहाँ जून 1931 तक बुद्धिजीवियों—इंजीनियर्स, डाक्टर्स, कालिज-प्रोफेसर, स्कूल-अध्यापक जो सरकारी सेवाओं में थे और जिनको नागरिकता भी प्राप्त थी, उनके बच्चों के विश्वविद्यालयों में दाखिले, किसानों तथा मिल-मजदूरों के बालकों के दाखिले हो जाने के बाद ही होते थे।

न तो यह लाभकर होगा, न सामयिक और न न्यायोचित कि सरकारी प्रशासन पर गैर-कृषक समुदाय के सदस्यों तथा शहरी लोगों का एकाधिकार हो। प्रजातन्त्र का तात्पर्य हर स्थान पर सामान्य लोगों की सरकार का होना होता है, कुछ वंशानुगत शासक जातियों तथा वर्गों का अधिकार नहीं। इसलिए विभिन्न आर्थिक और सामाजिक पेशों वाली जातियों के दावों को समानता तथा बराबरी की कसौटी के आधार पर संगत बनाना होगा, अन्यथा इनमें कटुता बनी रहेगी और वह निरन्तर विकसित होती रहेगी।

मेरे आलोचक यह चोट कर सकते हैं कि जब तुम हलवाहों के लिये सरकारी नौकरियों में आरक्षण का प्रस्ताव करते हो तो बढ़ई तथा बुनकर आदि के लिए मौन क्यों हो? यह आलोचना हास्यास्पद है। प्रशासकीय सुविधा का कोई सिद्धांत न तो शाश्वत होता है ओर न हर प्रकार के तथ्य तथा परिस्थितियों पर लागू होने वाला होता है। ऐसी कोई बात नहीं होती जिसकी यदि खींचतान की जाये तो वह हास्यास्पद न बन जाये? और यहाँ देहात तथा कृषक के लिए आरक्षण के जिस सिद्धांत का प्रतिपादन किया गया, वह इस आम सिद्धांत का अपवाद नही है। यथार्थ में किसान ही जन-समाज के प्रतीक हैं, ऊपर वर्णित पेशों के व्यक्ति नहीं। सच्चाई यह है कि सम्पत्तिशाली तथा उच्च-वर्ग के लोगों से सरकार भरी है। जैसा कि स्पष्ट दीख पड़ता है, किसान जितना पाने का अधिकारी है, मैं, उससे अधिक का दावा नहीं कर रहा हूं, यदि आरक्षण के दावे को स्वीकार कर लिया जाये तो इससे किसी की हानि नहीं होती। बाकी के बचे 50

प्रतिशत में, अन्य लोगों को अपना मौका तलाश करना चाहिए। (मैं यह कहूंगा कि कृषि तथा को-आपरेटिव विभागों का नियंत्रण शुद्ध रूप से किसानों की संतान के हाथ में होना चाहिए) इस सम्बन्ध में, हमको यह नहीं भूलना चाहिये कि यदि इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया जाता है तो उससे भविष्य में लोगों का चयन प्रभावित होता है और नौकरियों के ढांचे में पचास तथा साठ प्रतिशत का अनुपात प्राप्त करने में एक पीढ़ी की खपत हो सकती है।

सिद्धांतशास्त्री यह तर्क कर सकते हैं कि जीविका के पेशे योग्यता, केवल योग्यता के लिए खुले हों; किसी वर्ग के पक्ष में आरक्षण से योग्यता पर सदैव प्रहार होता है, क्योंकि इस प्रकार योग्यतम व्यक्तियों की भर्ती अवरुद्ध हो सकती है और प्रजातंत्र का यह निचोड़ है कि समस्त लोगों के साथ पूर्ण समता का व्यवहार किया जाये। इसका हमारे पास यही उत्तर है कि योग्यता केवल शिक्षा तथा किताबी ज्ञान में ही निहित नहीं होती, और व्यक्ति की श्रेष्ठता अथवा हीनता का मापदंड उस कार्य की सम्पन्नता होनी चाहिये जो उसे पूरा करने के लिए सौंपा गया है, किसी समान स्तर वाले प्रश्न-पत्र से हल किये गए प्रश्नों के उत्तर नहीं। इसके साथ ही सार्वजनिक सेवाओं के मामले में, सभी को समान, उस अवस्था में समझना चाहिए जब कि समाज या लोकतंत्र वाली सरकार ने प्रगति की दिशा तथा शिक्षा में सबको समान सुविधाएँ प्रदान कर दी हों। यह घोर अन्याय होगा कि पहले तो विशाल जनसमूज को विकास तथा ज्ञान से वंचित रखा जाये और फिर अयोग्यता के बहाने से, उसके सरकारी सेवाओं से बाहर रहने को उचित ठहराया जाये। समान शैक्षिक स्तर की बात उसी हालत से न्यायोचित हो सकती है जब सबको समान सुविधाएँ प्रदान की गई हों। योग्यता के साथ चिपके रहने वालों को यह समझ लेना चाहिए कि जिसे "शैक्षिक योग्यता" कहा जाता है, मैं उस की पूर्ण उपेक्षा का समर्थन नही करता, केवल न्यूनतम शैक्षिक योग्यता रखने वाले कृषकों को नौकरियों में स्थान दिया जाये। यहाँ पर यह बताना आप्रसंगिक न होगा कि कुछ क्षेत्रों में यह विश्वास घर कर गया है कि आवश्यक शैक्षिक योग्यताओं से सम्पन्न ग्रामीण इलाकों के युवक भी नौकरियों के लिए उपलब्ध न हो सकेंगे, पहले तो यह विश्वास निराधार है, दूसरे यदि ऐसे युवक न मिलें तो उन स्थानों को अन्यों द्वारा भर देना चाहिए। मैं यह कह सकता हुं कि किसान-वर्ग के योग्य उम्मीदवारों के अभाव का तर्क, उत्तर-प्रदेश के पूर्वी तथा मध्य भाग से परिचित व्यक्तियों द्वारा ही किया जा सकता है, जहाँ यथार्थ में किसान आर्थिक तथा सांस्कृतिक दृष्टि से बहुत पिछड़ा हुआ है, जहाँ सीधे स्वर्ग से उतरे ऊंची जाति के हिन्दुओं द्वारा शारीरिक श्रम को घृणाभरी दृष्टि से देखा जाता है, यही कारण है कि यहाँ खेत जोतने वाला व्यक्ति, पश्चिमी भाग की अपेक्षा, द्वितीय श्रेणी के लोगों से भी हीन माना जाता है।

किसानों के लिए नौकरियों में आरक्षण के सवाल पर एक विरोध यह किया

जा सकता है कि कुछ मामलों में यह प्रस्ताव अव्यावहारिक इस अर्थ में है कि बहुत से संदर्भों में यह निश्चय नितांत कठिन होगा कि विशिष्ट प्रत्याशी किसान का पुत्र है अथवा नहीं ? क्योंकि अनेक लोग, जो शहरों में रहते हैं या कोई व्यवसाय करते हैं, पटवारी के रजिस्टर में, कृषक लिखे हुए हैं। इस एतराज पर मेरा उत्तर इस प्रकार है—जनगणना के समय जिन लोगों ने अपना सहायक-पेशा खेती लिखाया है, वे आठ प्रतिशत से अधिक नहीं हैं, दूसरे चयन-अधिकारियों की सुविधा के लिए नियम बनाये जा सकते हैं और अनुभव के आधार पर उनमें संशोधन भी किया जा सकता है। दुनिया के हर देश के राजनीतिज्ञों को, अपने देश के प्रशासन में अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ा है और उनका संतोष जनक समाधान भी कर लिया गया है। पंजाब की सरकार के सामने, जिस समय सन् 1938 में उसने सरकारी नौकरियों में किसानों के लिये आठ प्रतिशत का आरक्षण किया था, यह कठिन समस्या थी कि किसी व्यक्ति की जाति तथा धर्म के आलोक में उसके किसान होने का निश्चय कैसे किया जाये ? मुझे आशा है कि संयुक्त-प्रदेश की सरकार वह भूल नहीं दुहरायेगी और किसानों के साथ न्याय करते हुए राष्ट्रीय एकता की भावना के प्रकाश में, इस समस्या का समाधान खोज लेगी।

मैं जानता हूँ कि देहाती वर्ग, शहरी समाज और इस प्राचीन देश के अन्य सभी वर्ग, अच्छाई तथा बुराई के कामों में, सभी एक साथ हैं और केवल अपराध की भावना उनमें ईर्ष्या पैदा करती है, लेकिन देहात तथा किसान-समाज जो हमारे पूर्वजों के बलवान स्वास्थ्य का प्रतीक है, और राष्ट्र की युवा-शक्ति को जन्म देने वाला है, को, किसी भी बहाने के आधार पर, देश के प्रशासन में समुचित भाग एवं अन्य शक्ति और अधिकारों से वंचित कर देना, मैं असल में एक बहुत बड़ा अपराध मानता हूँ। इसका कारण यह है कि सार्वजनिक-सेवाएँ जन-समाज के लाखों व्यक्तियों की समस्याओं का समाधान तो करती ही हैं, साथ ही ये राजनीतिक शक्ति तथा प्रभुत्व के अस्त्र भी बनती हैं। मेरी यह बात राष्ट्रीयता के मार्ग की बाधा नहीं, वरन् उसको अधिक बढ़ाने वाली है, तमाम व्यक्तियों को यह समझ लेना चाहिए कि प्रशासनतंत्र नगर-निवासियों अथवा गैर-कृषक-समाज के लिए एक किला एवं सुरक्षित स्थान नहीं है और जीवन की अन्य अच्छी चीजें तथा शिक्षा केवल कुछ लोगों के एकाधिकार का क्षेत्र नहीं है, बल्कि वह जमीन से पैदा हुए प्रत्येक व्यक्ति की मिलीजुली विरासत है।

यह भी हो सकता है कि जबान के तेज पक्के लोकतंत्रवादी अथवा दूसरे लोग, इस सिद्धान्त के विरोध में कोई और तुरप चल दें, मैं केवल यह कह सकता हूँ कि किसानों के न्यायसंगत दावे बहुत दिनों से सम्पत्तिशाली तथा शिक्षित वर्ग, जो विशेष अधिकार प्राप्त तथा गैर-कृषक है, के हितों के नीचे कुचले जाते रहे हैं, यह भी सत्य है कि किसान ही प्रत्येक व्यक्ति के हितों की रक्षा करता है,

अपने कन्धों पर प्रांतीय प्रशासन के समस्त भार को वहन करता है। उन सभी लोगों को, जो इस प्रदेश के भाग्य-विधान में थोड़ा भी अधिकार रखते हैं, और जिनके दिलों में किसान-वर्ग के हितों के प्रति लगाव है, अपने प्रभाव का प्रयोग इस प्रकार करना चाहिए कि सार्वजनिक-सेवाओं में, चयन के मामले में, किसान के साथ न्याय हो। "ह्वीट मार्केटिंग रिपोर्ट" का लेखक एक अन्य सम्बन्ध में लिखता है—"इस प्रकार के कदम के अभाव में, किसानों के हितों के पक्ष का कथन अविश्वास तथा संदेह की दृष्टि से देखा जा सकता है।" "इण्डियन पीजेंट्स" का लेखक डॉ० डी० एन० गंगोली, जो 'रॉयल कमीशन ऑन एग्रीकल्चर' के सदस्य थे, उसी स्वर में शिकायत करते हैं—

"इस देश की राजनीति पर शहरी वर्ग का आधिपत्य है। देश में किसान की आवाज नहीं सुनी जाती, यद्यपि वह भारतीय जनता के 75 प्रतिशत भाग का प्रतिनिधित्व करता है। किसान के प्रति प्रत्येक व्यक्ति शाब्दिक सहानुभूति दिखाता है। देहाती इलाके से आए कॉंग्रेस-जनों के एक भाग के अतिरिक्त कोई भी उसके हितों के विषय में चिंतित नहीं है।"

इस कथन से, मेरे प्रस्ताव को बल मिलता हैऔर यह भी सिद्ध होता है कि मैंने एकदम कोई नई तथा आश्चर्यजनक बात नहीं कही है। कॉंग्रेस सरकार ने, अपने अल्पकालीन अधिकार के युग में, कुछ विभागों में, दस में से एक स्थान, कुछ किसानों के लिऐ आरक्षित करने की बात स्वीकार की थी। यह आरक्षण बहुत थोड़ा है, दूसरे इसका दुरुपयोग होने के कारण, प्रशासन पर कोई प्रभाव स्थापित नहीं कर पाया। यदि इसको घिसा-पिटा नहीं रखना है, यदि वह वास्तव मे किसानों के हितों के लिए है, जिसकी वजह से हमारे नेताओं ने इस दिशा में सोचने का प्रयास किया था, तो मैं इस सिद्धान्त के उत्कर्ष की वकालत करता हूँ।

इस प्रसंग का अन्त करते हुए, इतना कहूँगा कि मुख्यमन्त्री पं० गोविन्द वल्लभ पंत ने 29 जनवरी 1947 को लखनऊ में विभागीय कार्यालयों की 'डवलपमेंट कान्फ्रेंस का उद्घाटन करते हुए, इस बात पर बल दिया था कि मनुष्य के कार्यों में मनोवैज्ञानिक तत्व महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। हमारे राष्ट्र का निर्माण करने वाले विभागों की असफलता पर बोलते हुए आपने कहा था—

"हमारे विभाग प्रायः सीलबन्द हैं। प्रत्येक विभाग बनावटी वातावरण में काम कर रहा है। गरीब और गंवार कहलाने वाला किसान परस्पर विरोधाभासों से भरी अपीलों पर किंकर्तव्यविमूढ़ हो रहा है। मशीनवत् ये अपीलेंअनेक लोगों द्वारा प्रसारित की गई हैं। इनमें से एक व्यक्ति भी उसके जीवन में हाथ बंटाने वाला तथा वास्तव में उसकी सेवा की भावना से अनुप्रेरित दिखाई नहीं पड़ता। आपको उसे विश्वास दिलाना पड़ेगा कि आप तथा मैं यथार्थ में उसके शुभचिंतक हैं और उसकी सेवा करने का विचार रखते हैं। जब तक आप यह

काम नहीं कर लेते, तब तक हमारी समस्त अपीलें व्यर्थ जाएँगी, इनके पक्ष में कोई प्रतिक्रिया नहीं होगी। मुझे इस कथन के लिए क्षमा करेंगे कि अपने इन कॉलर, पेंट तथा हेट के साथ, आप, सहज तथा स्वाभाविक अपील नहीं कर सकते। मैं व्यक्तिगत रूप से सोचता हूँ कि हमारे आफीसरों को गाँवों की ओर जाना चाहिए और डाकबंगलों में ठहरने की बजाय किसानों के परिवार के साथ रुकना चाहिए। इससे उनको एक सीमा तक तकलीफें तथा असुविधाएँ होंगी, किन्तु इससे उनका काम आसान होगा। यह एक बहुत मामूली, ओछी और छोटी बात है, किन्तु हम लोग यह जानने की कोशिश नहीं करते कि ये मामूली बातें एक व्यक्ति तथा समुदाय को अपनी हल न होने वाली समस्याओं के समाधान की दिशा में कितना प्रभावित करती हैं। आप एक स्विच दबाते हैं और देखते हैं कि मीलों तक रोशनी फैल जाती है, यहाँ भी यही बात है। यदि आप इस स्विच को ठीक तरह से प्रयोग कर लें तो आप देखेंगे कि प्रकाश चारों ओर फैल रहा है और आपको यह देखकर आश्चर्य होगा कि आप कितनी आसानी के साथ उसकी बुद्धि तथा कल्पना को प्रभावित करने में समर्थ हो रहे हैं।"

मुख्यमंत्री जी ने ठीक स्थान पर इशारा कर दिया है। जिस बीमारी से हमारी सेवायें रोगग्रस्त हैं, वह भलीप्रकार पहचान ली गई हैं। लेकिन मैं, सम्मानपूर्वक, यह कहने का साहस करता हूं कि हमारे आफीसरों पर उनकी अपील का कोई प्रभाव नहीं होगा, क्योंकि वे जिस वर्ग से आये हैं अथवा जिसका पालन करते हैं और जिस वातावरण में रहते हैं, वह किसानों तथा देहातियों के विपरीत है। केवल वे आफीसर जो किसानों द्वारा लपेटे जाने वाले कपड़ों में पले हैं, किसान के जीवन का अंग बन सकते हैं और उनके पास रात को ठहर सकते हैं। केवल वे अधिकारी जो आर्थिक-सूत्रों, सांस्कृतिक सम्बंधों और मनोवैज्ञानिक नज़दीकीपन में उनके साथ हैं, वे ही ठीक सूत्रों को पकड़ सकते हैं और उस स्विच को दबा सकते हैं जो उसके जीवन को आलोकित कर सकती है और उस अंधकार का निवारण कर सकती है, जिसने आज उनको चारों ओर से घेर लिया है। एक ग्रामीण तथा किसान के दिल को केवल वही जीत सकता है, जिसकी प्रतिक्रिया वस्तुओं के प्रति किसान के समान होती है, कोई दूसरा नहीं। इसलिए हमको एक कदम और आगे जाना पड़ेगा। हमें उपदेश देने की अपेक्षा, सार्वजनिक सेवाओं की नियुक्तियों की पद्धति को बदलना पड़ेगा।

किसान-ट्रस्ट के अन्य प्रकाशन :

1. WHO IS A CASTEIST ? AN ANALYSIS

BY : AN OBSERVOR

Price : Rs. 2.00

2. जातिवादी कौन : एक विश्लेषण

लेखक : एक दृष्टा

मूल्य : 2.00 रुपये

3. HOW WE CONQUERED INDIA

निःशुल्क

4. भारत का आर्थिक पतन : कारण एवं समाधान

लेखक : चौधरी चरण सिंह

मूल्य : एक रुपया

नोट : 1. दो रुपये मूल्य की एक पुस्तक का साधारण डाक खर्च 2.50 रुपये होगा। रजिस्टर्ड डाक द्वारा मंगाने पर 5.55 रुपये होगा। यहां से वी. पी. भेजना संभव न होगा, अतः कृपया मनिआर्डर द्वारा डाक खर्च पहले भेज दें।

2. निःशुल्क पुस्तक का साधारण डाक व्यय 90 पैसे होगा और रजिस्टर्ड 3.55 रुपये होगा।

3. पुस्तकें मंगाने के लिए प्रकाशन विभाग, किसान-ट्रस्ट, 12 तुगलक रोड, नई दिल्ली-110011 को लिखें